राजकमल पेपरबेक्स

खुशवंत सिंह

पाकिस्तान मेल

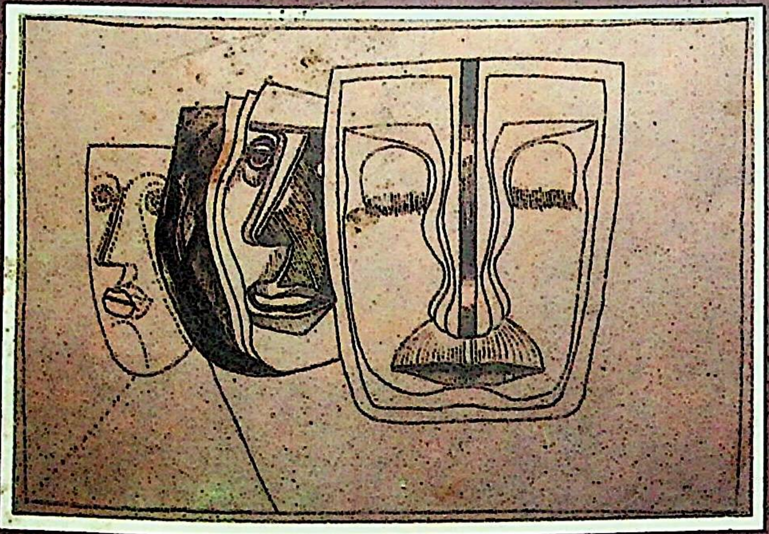

9.2

पाकिस्तान मेल

खुशवंत सिंह

जन्म : 15 अगस्त, 1915, हडाली (संप्रति, पाकिस्[illegible] ...[illegible]ा : लाहौर से स्नातक तथा किंग्स कॉलेज, लंदन, से एल.एल.बी.[illegible]

उपलब्धियाँ : 1939 से 1947 तक लाहौर हाईको[illegible] विभाजन के बाद भारत की 'राजनयिक सेवा' के अंतर्गत कनाडा [illegible] अफ़सर' तथा इंग्लैंड में भारतीय उच्चायुक्त के 'प्रेस अटैची' रहे। [illegible] वर्षों तक प्रिंस्टन तथा स्वार्थमोर विश्वविद्यालय में अध्यापन भी किया।

भारत लौटकर नौ वर्षों तक 'इलस्ट्रेटेड वीकली' तथा तीन वर्षों तक 'हिंदुस्तान टाइम्स' का कुशल संपादन किया। 1980 में राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए। 1974 में पद्‌मभूषण की उपाधि मिली, जिसे 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' के खिलाफ गुस्सा जताते हुए लौटा दिया।

तीस से अधिक पुस्तकें लिख चुके हैं, जिनमें प्रमुख हैं, 'ट्रेन टु पाकिस्तान', 'हिस्ट्री ऑफ सिख्स' के दो खंड तथा 'रंजीत सिंह'। एक और उपन्यास, चार कहानी-संग्रहों तथा अनेक लेखमालाओं के अतिरिक्त उर्दू और पंजाबी से कई अनुवाद भी किए।

संप्रति 'हिंदुस्तान टाइम्स' तथा 'संडे' के लिए नियमित रूप से क्रमशः 'विद मैलिस टुवर्ड्स वन एंड ऑल' एवं 'गॉसिप, स्वीट एंड सॉर' लिखते हैं तथा 'पेंगुइन बुक्स कंपनी इंडिया' में सलाहकार संपादक के पद पर कार्यरत हैं।

आवरणचित्र

महेंद्रकुमार पुरी (जन्म : सितंबर 1938) की चित्रकृति। भारत के आधुनिक चित्रकारों में एक सुपरिचित नाम। 1968 से अब तक पेरिस और भारत के विभिन्न नगरों में 11 एकल प्रदर्शनियाँ कर चुके हैं और अनेक समूह-प्रदर्शनियों में हिस्सेदारी की है। देहरादून, दिल्ली, मथुरा और जयपुर के कई सिनेमाघरों और औद्योगिक मेलों के लिए भित्तिचित्रों का निर्माण किया।

महेंद्र पुरी के चित्रों का आधार मुख्यतः नारी-पुरुष आकृति है। इन्हीं को लेकर वे जन्म और मृत्यु के बीच फैले जीवन के विविध रूपों और मानवीय सुख-दुख को अंकित करते हैं। तैलचित्रों के अलावा उन्होंने रेखांकन भी बहुत किए हैं जो कला-समीक्षकों द्वारा सराहे गए हैं। इन दिनों वे कागज पर पेंसिल और कैनवास पर एक्रिलिक के प्रयोग से अपनी कला को एक नया रूप दे रहे हैं।

राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नई दिल्ली, समेत देश-विदेश के अनेक संग्रहालयों और निजी संग्रहों में काम है।

खुशवंत [illegible]

पाकिस्तान मेल

अनुवाद
उषा महाजन

राजकमल पेपरबैक्स

पहला पुस्तक[illegible]
राजकमल [illegible]
नई दिल्ली से
1991 में प्रकाशित
© खुशवंत सिंह

राजकमल पेपरबैक्स में
पहला संस्करण : 1994
पहली आवृत्ति : 1996
छठी आवृत्ति : 2004
© खुशवंत सिंह

राजकमल पेपरबैक्स : उत्कृष्ट साहित्य के जनसुलभ संस्करण

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली-110 002
द्वारा प्रकाशित

बी.के. ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032
द्वारा मुद्रित

मूल्य : रु. 50.00

आवरणचित्र : महेंद्रकुमार पुरी

PAKISTAN MAIL
Novel by Khushwant Singh

ISBN : 81-267-0426-8

माला दयाल के लिए

खुशवंत सिंह, जिसने [illegible] कस्तान' लिखी

बचपन से ही सुख-वैभव में पले, विदेशों में पढ़े व्यक्ति का, पहले वकालत और फिर इंगलैंड में उच्च राजनयिक पद को स्वेच्छा से ठुकराकर स्वतंत्र लेखन जैसे अनिश्चित और संघर्षमय कार्य में आ जुटना समझ में न आनेवाली बात तो थी ही । एक दिन बातों ही बातों में उनसे पूछा तो बोले —

सन 1950-51 की बात है । मैं लंदन में भारतीय हाई कमिश्नर का प्रेस अटैची लगा हुआ था । पिछले चार सालों के राजनयिक जीवन में कॉकटेल पार्टियों, लंच, डिनर और रिसेप्शनों से मैं ऊब चुका था । तत्कालीन हाई कमिश्नर से मेरे संबंध भी कटु से कटुतर होते चले जा रहे थे । एक सुबह मैंने अपने आप से कहा कि बस, अब बहुत हो चुका । उसी दिन मैंने अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण निर्णय ले लिया । मैंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया और पूर्णकालिक लेखक बनने की ठान ली । तब तक सैटर्न प्रेस, लंदन से मेरा पहला कहानी-संग्रह 'मार्क ऑफ विष्णु' छप चुका था ।

नौकरी छोड़ने के बाद लंदन के हाइगेट में किराए का एक फ्लैट लेकर मैंने लिखना शुरू किया । मैंने सिख इतिहास के दो खंड लिखे जो 'एलेन एंड अनविन' से 'द सिख्स' नाम से छपे । इसी दौरान मैंने सिखों की प्रातःकालीन प्रार्थना 'जपजी' का भी अंग्रेजी अनुवाद किया जो 'प्राब्स्थायन' से छपा ।

नौकरी के चार सालों में जो भी कमाया था, इन दिनों में खर्च हो गया और सन् 1951 की गर्मियों में मैं दिल्ली लौट आया । दिल्ली में मुझे अपने पिता के घर उन्हीं की मेहरबानी पर निर्भर करना पड़ी

रहा था। सभी मुझे पा[illegible] कि मैंने इतनी अच्छी नौकरी को नाहक [illegible]ाई में भी कभी इतना अच्छा नहीं [illegible] रूप में मैं कभी सफल भी हो पा[illegible]ों के ताने और दोस्तों की खि[illegible] आ गया कि जी हुआ दिल्ली छोड़क[illegible] मेरे पिता की एक आइसक्रीम फैक्ट्री [illegible] के किनारे एक घर था। मैं वही चला गया। वहाँ मैंने भारत के विभाजन पर एक उपन्यास लिखना शुरू किया। निपट अकेला था वहाँ। दिन-भर लिखता रहता। बीच-बीच में जंगलों की लंबी सैर को निकल जाता। शाम को रम या जिन पीकर सो रहता। तीन महीनों में उपन्यास का ड्राफ्ट तैयार हो गया और मैं दिल्ली लौट आया।

उन दिनों मेरा आत्मविश्वास बिल्कुल डाँवाडोल था। पिता से पैसे माँग-माँगकर गुजारा कर रहा था। बच्चों की फीस के पैसे बीवी दे रही थी। बेमन से ही तब मैंने ऑल इंडिया रेडियो की नौकरी पकड़ ली। यहाँ करने-धरने को कुछ था नहीं। बस एक ही तसल्ली थी कि इन दिनों मेरी नीरद चौधरी से काफी दोस्ती हो गई। वे हमारे लिए स्क्रिप्ट लिखा करते थे। रूथ प्रावर झाबवाला से भी मैं तभी मिला। वे अक्सर हमारे पास 'टॉक्स' की रेकार्डिंग के लिए आया करती थीं।

एक अंग्रेज राजनयिक वाल्टर बेल की पत्नी टैटी मेरे उपन्यास को टाइप करने के लिए राजी हो गई। तभी न्यूयार्क की 'ग्रोव प्रेस' ने भारत में लिखे गए सर्वश्रेष्ठ उपन्यास के लिए एक हजार डॉलर के इनाम की घोषणा की। मैंने अपने उपन्यास को 'ग्रोव प्रेस' को भेजने का निश्चय कर लिया। टैटी बेल ने मुझे बहुत निरुत्साहित किया कि भेजना बेकार है, केवल पोस्टेज बर्बाद करनेवाली बात होगी। पर मैंने उसके बावजूद उपन्यास की पांडुलिपि 'ग्रोव प्रेस' को भेज दी।

इस बीच यूनेस्को के तत्कालीन डायरेक्टर जनरल डा. लूथर इवांस ने मुझे अपने 'मास कम्यूनिकेशन डिवीजन' के सहायक प्रमुख

के रूप में नौकरी करने की ...ना ... जिसे मैंने स्वीकार कर लिया और एक बार फिर अप... ...रोप को रवाना हो गया। पेरिस में रहते ... ...ना ... सुखद अनुभव तब हुआ जब मु... ... 'ग्रोव प्रेस अवार्ड' से सम्मानित किया...

इसे ग्रोव प्रेस ने 'मनो... ... एंड विंडस ने 'ट्रेन टु पाकिस... ...प्रेस' ने भी इसका द्वितीय संस्करण 'ट्रेन टु पाकिस्ता... नाम से ही निकाला।

यह उपन्यास मेरी सर्वाधिक प्रिय रचना है, क्योंकि इसी ने मुझे लेखक के रूप में असली पहचान दी, शोहरत दी। बाद में इसका कई भाषाओं में अनुवाद हुआ।

आज से चालीस वर्ष पहले लिखे इस उपन्यास का अनुवाद करना मेरे लिए जितना कठिन रहा, उतना ही सरल भी। कठिन इसलिए कि बँटवारे की इस व्यथा-कथा को लिखते लेखक के तत्कालीन मूड को पकड़ने में मैं इतना रम जाती कि रह-रहकर जी भर आता। सरल इसलिए कि बेशक खुशवंत जी ने इसे लिखा तो अंग्रेजी भाषा में ही था, किंतु उपन्यास की आत्मा में तो हमारे ही जाने-पहचाने लोगों का दुख दर्द बसा था, हमारे ही स्वभाव, हमारी ही आदतें, हमारे ही व्यवहार और हमारी ही मिट्टी की गंध बसी थी।

बहरहाल, उपन्यास आपके सामने है। संवेदना के धरातल पर जिस तरह इसने मेरे अंतस को झिंझोड़ा, आपके मन के साथ भी इसका वैसा ही तादात्मय स्थापित हो सके, यही कामना है।

उषा महाजन

28 अगस्त, 1990

8146, सेक्टर-बी, पॉकेट-11,
नेल्सन मंडेला रोड, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110 037

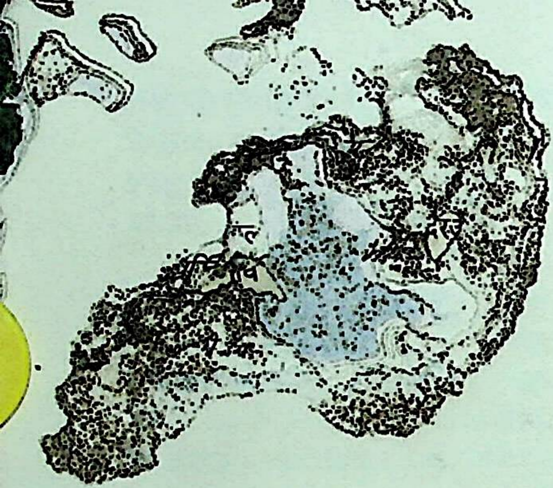

1947 की गर्मियाँ आम [illegible]ाना [illegible] उस साल हिंदुस्तान के मौसम में भी ए[illegible] [illegible]र्मी हुँ[illegible] कुछ अधिक गर्म, शुष्क और धूलभरा । [illegible] को याद नहीं आ रहा था कि किस सा[illegible] थी । हफ्तों से छुटपुट बादल सिर्फ घिर-[illegible] [illegible] ही नहीं । लोगों ने कहना शुरू कि[illegible] दे रहा था ।

कुछ लोगों के लिए तो ऐसा सोच[illegible] कि उन[illegible] थे । पिछली गर्मियों में, देश को हिंदू भारत और मुस्लिम पाकिस्तान [illegible] की प्रस्तावित रपट से कलकत्ते में सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे थे और कुछ ही महीने के भीतर मरनेवालों की संख्या हजारों में जा पहुँची थी । मुसलमानों ने कहा कि यह हिंदुओं की योजना थी और मारकाट पहले उन्होंने ही शुरू की । हिंदुओं ने यही आरोप मुसलमानों पर लगाया । असलियत यह थी कि मारकाट दोनों तरफ से बराबर हुई थी । दोनों तरफ से गोलियाँ चलाई गई थीं । दोनों ने छुरे घोंपे थे, भाले और बल्लम चलाए थे । दोनों ने बलात्कार किए थे । दोनों ने एक-दूसरे पर कहर बरपाया था ।

कलकत्ते से बढ़कर दंगे उत्तर, पूर्व और पश्चिम की ओर फैलने लगे; पूर्वी बंगाल में नोआखाली तक, जहाँ मुसलमानों ने हिंदुओं का कत्ल किया और इधर बिहार तक, जहाँ हिंदुओं ने मुसलमानों का । मुल्ले लोग पंजाब और सरहदी सूबों में बिहार में मारे गए मुसलमानों की खोपड़ियाँ संदूकों में भर-भरकर घूमने लगे । सदियों से देश के उत्तर-पश्चिमी सरहदी इलाकों में रहते आ रहे हिंदू और सिख अपना घर-बार छोड़ सुरक्षा के लिए पूरब की तरफ हिंदू और सिखों की बहुतायतवाले इलाकों की तरफ भागने लगे । कोई पैदल ही चल पड़े, कोई बैलगाड़ियों में, कोई ठसाठस भरी लारियों में लदे, तो कोई रेलगाड़ियों से लटके या उनकी छतों पर पटे । रास्तों में उनकी मुठभेड़ें वैसे ही त्रस्त मुसलमानों से हुईं, जो सुरक्षा के लिए पश्चिम की तरफ भाग रहे थे । दंगे भगदड़ में बदल गए थे ।

1947 की गर्मियों तक, जबकि पाकिस्तान के नए राज्य के निर्माण की

उ[illegible] पाती कि वे दूसरे धर्म के लोगों का कत्ल कर उनकी जमीन [illegible] तना ही किया जा सकता था कि इस कत्ल और लूट की प्रवृत्ति [illegible] ता से मोड़कर संपन्न वर्ग की ओर कर दिया जाए [illegible] एक आसान तरीका था। पर उसकी पार्टी [illegible] दिमाग [illegible] घुसेगी भी।

इकबाल [illegible] सोचा [illegible] माजरा में उसकी जगह किसी और को भेजा गया होता। [illegible] नीतियों का निर्देशन करने और लोगों के दिमागों में लगे जालों को साफ करने में ज्यादा कारगर होता। पर वह दल का नेता थोड़े ही था। नेता होने लायक योग्यता कहाँ थी उसमें ? उसने कभी भूख-हड़ताल जो नहीं की। कभी जेल नहीं गया। नेता बनने के लिए अनिवार्य कोई भी कुर्बानी तो उसने नहीं दी। तो स्वाभाविक ही था कि उसकी कौन सुनता। राजनीति में अपनी जगह बनाने का इरादा था तो उसे किसी न किसी बहाने जेल जाना चाहिए था। अब भी क्या बिगड़ा था। अब भी वक्त था। दिल्ली वापस लौटते ही कोई तरकीब निकालेगा। तब तक कत्लेआम भी रुक चुका होगा। खतरे की कोई बात नहीं होगी।

मालगाड़ी स्टेशन से चल पड़ी थी और पुल पर गड़गड़ाती हुई जा रही थी। जेल के शांत जीवन के स्वप्न देखते-देखते इकबाल को नींद ही आ गई।

अगले दिन तड़के ही इकबाल को गिरफ्तार कर लिया गया। मीत सिंह कीकर की दतुवन चबाता, हाथ में पीतल का लोटा लेकर मैदान गया हुआ था। रेलगाड़ियों की गड़गड़ाहटों, मुल्ले की अजान और गाँव से उठते तमाम शोरगुल के बावजूद इकबाल घोड़े बेचकर सोया हुआ था। दो कांस्टेबल सबेरे-सबेरे ही गुरुद्वारे में दाखिल हुए और इकबाल के कमरे में पहुँचे। उन्होंने कमरे में पड़े कप-प्लेटों, चमकते हुए चम्मचों, काँटों, छुरियों तथा थर्मस फ्लास्क को उलट-पुलटकर देखा और जीना चढ़कर छत पर आए। सोए हुए इकबाल को उन्होंने झकझोरकर उठाया। हैरान हुआ-सा वह आँखें मलता उठ बैठा। स्थिति को भाँपे बगैर ही उसने पुलिसवालों को अपना नाम-पता बता दिया। उनमें से एक ने अपने हाथ में पकड़े एक छपे हुए

पीले कागज पर कुछ रिक्त स्थानों को भरा और ह[illegible] से हु[illegible] के आगे कर दिया।

“तुम्हारी गिरफ्तारी का वारंट है ![illegible]

दूसरे ने उसको हथकड़ी पहनाने की [illegible]ते ही इकबाल की नींद फुर्र हो गई। वह [illegible]कर सि[illegible] के सामने खड़ा हो गया।

“तुम्हें इस तरह मुझे गिरफ्तार करने का कोई हक नहीं है”, वह चिल्लाया, “तुमने वारंट अभी मेरे सामने बनाया है। ऐसे नहीं चलेगा ! पुलिस राज के दिन अब लद गए। मैं भी देखूँगा कि अखबारों में यह साफ-साफ छपे कि तुम लोग अपनी ड्यूटी कैसे निभाते हो !”

सिपाही सकते में आ गए। नवयुवक का बातचीत करने का ढंग, रबर का तकिया और गद्दा, उसके कमरे की बाकी सब चीजें और सबसे बढ़कर तो उसके बोलने का तल्ख अंदाज ! वे तनिक हिचकिचाए। आदमी को पहचानने में कहीं उनसे कोई गलती तो नहीं हो गई ?

“बाबू साहिब, हम तो अपना फर्ज निभा रहे हैं। बाकी तो आप मजिस्ट्रेट साहब से ही तय करिएगा।” एक सिपाही ने जरा हड़बड़ाते हुए कहा और दूसरा किंकर्तव्यविमूढ़-सा हथकड़ियों को उलटने-पुलटने लगा।

“मैं तुम सबको देख लूँगा। पुलिस को भी और मजिस्ट्रेट को भी। तुम लोग सोए हुए लोगों को भी परेशान करते हो ! तुम्हें अपनी करनी पर पछताना ना पड़ा तो कहना !” इकबाल चाहता था कि वे कुछ बोलें तो वह कानून और व्यवस्था को लेकर थोड़ा और विष-वमन करे। पर सिपाहियों ने मुँह सिंए ही रखा।

“आप लोगों को इंतजार करना होगा। मैं मुँह-हाथ धोकर कपड़े बदलूँगा और अपना सामान भी मुझे किसी के सुपुर्द करना है, तब ही...” इकबाल ने आक्रामक लहजे में कहा, ताकि उन्हें भी कुछ बोलने का मौका मिले।

“ठीक है, बाबू साहिब, आप तैयार हो लें !”

सिपाहियों कि विनम्रता ने इकबाल का गुस्सा ठंडा कर दिया। अपना बिस्तर उठाकर वह नीचे कमरे में आया। कुएँ पर जाकर एक बाल्टी पानी निकालकर आराम से अपना मुँह-हाथ धोने लगा।

...सिंह जो... ज़ोर से दाँत माँजता वापस आ पहुँचा। दातुन को चबा-च... उस... रूप दे दिया था। गुरुद्वारे में सिपाहियों को देखकर वह चौं... क्योंकि जब भी वे गाँव में आते और लंबरदार के यहाँ ठहरते... गुरुद्वारे में आकर ही रुकते थे। लाला का कत्ल हुआ था तो उनका... था, वह जानता था।

"सत श्री अकाल..." ने कहा।

"सत श्री अकाल!" सिपाहियों ने जवाब दिया।

"चा-शा पीयोगे? या थोड़ी लस्सी!"

"हम लोग बाबू साहिब का इंतजार कर रहे हैं," सिपाही बोले, "जब तक वे तैयार होते हैं तब तक कुछ पिला दो तो ठीक है।"

मीत सिंह ने अधिक कुछ नहीं पूछा। पुलिसवालों से ज्यादा खोद-खोदकर पूछने का उसे क्या मतलब? हो सकता है इकबाल सिंह 'कामरेड' हो। बातें तो वैसी ही करता था।

"मैं चाय बनाता हूँ, उनके लिए भी", मीत सिंह ने जवाब दिया और इकबाल की ओर मुखातिब होकर पूछा, "या कि बाबू साहिब, आप अपनी ही बोतल में से··· ?"

"शुक्रिया", टूथपेस्ट का झाग थूकते हुए इकबाल ने कहा, "थर्मसवाली चाय तो अब ठंडी हो चुकी होगी। गरमागरम एक कप पिला ही दो, मेहरबानी होगी। और भाई जी, अगर आप मेरे पीछे मेरी चीजों का भी ख्याल कर लो तो···? ये लोग मुझे किसी बात के लिए गिरफ्तार कर रहे हैं। पर किस बात के लिए? यह खुद भी नहीं जानते!"

मीत सिंह ने ऐसे दिखाया, जैसे उसने कुछ भी नहीं सुना। सिपाही कुछ लज्जित-से दिख रहे थे।

"बाबू साहिब, इसमें हमारा कोई कसूर नहीं," उनमें से एक बोला, "आप हमारे ऊपर खफा क्यों होते हो? मजिस्ट्रेट पर गुस्सा करो।"

इकबाल उनकी बातों की परवाह किए बगैर ब्रश करता रहा। उसने अपना मुँह धोया और तौलिए से पोंछते-पोंछते कमरे में लौट आया। उसने अपने तकिए और गद्दे से हवा निकाली और उन्हें लपेटा! होल्डॉल में से सारी चीज़ें नीचे ढेरी की—किताबें, कपड़े, टॉर्च, चाँदी का हिप-फ्लास्क।

उन सबकी एक लिस्ट बनाकर उसने वापस होल्डॉल में भर दिया । [illegible] सिंह चाय लेकर आया तो इकबाल ने सारा सामान उ[illegible]ा दि[illegible]

"भाई जी, मैंने अपना सारा सामान इस होल्[illegible] दिया है । उम्मीद है आपको इनकी निगरानी करने में अधिक[illegible]गी । अपने इस आजाद मुल्क की पुलिस के बजाय मुझे [illegible]

सिपाहियों ने मुँह दूसरी तरफ फे[illegible] मीत सिंह को भी कुछ अटपटा- सा लग रहा था । वह विन[illegible]ला, "बाबू साहिब, मैं तो आपका भी सेवक हूँ और पुलिस का भी । [illegible] तो सभी का स्वागत है ! अच्छा, आप चाय अपने ही कप में पीएँगे या" ?"

इकबाल ने अपना सेलुलाइड का कप और चम्मच निकाला । सिपाहियों को मीत सिंह ने पीतल के गिलासों में चाय थमा दी । अपनी पगड़ियों के लटकते हुए सिरों से उन्होंने गरमागरम गिलासों को थाम लिया और जोर- जोर से सुड़प- सुड़पकर पीने लगे । सिपाही गुरुद्वारे की चौखट पर बैठे हुए थे । मीत सिंह फर्श पर और इकबाल बड़े रौब से मूँज की चारपाई पर बैठा था । मजाल कि सिपाही उसके सामने बोल सके । हथकड़ीवाले सिपाही ने आहिस्ता से हथकड़ियों को अपनी पेटी से अलग किया और जेब में डाल लिया । चाय खत्म करके उन्होंने बेचैनी से इकबाल की तरफ देखा । वह बीच- बीच में चाय की चुस्कियाँ लेता, दूर कहीं शून्य में निहारता उदास- सा हुआ बैठा था । चाय खत्म करते ही उठ खड़ा हुआ, "मैं तैयार हूँ", अपने हाथों को आगे करते हुए उसने कहा, "पहना लो हथकड़ियाँ ।"

"हथकड़ी की कोई जरूरत नहीं, बाबू जी", एक सिपाही बोला, "बस, अपना सिर ढँक लो । नहीं तो पुलिस स्टेशन पर पहचान के लिए परेड होगी तो लोग आपको पहचान लेंगे ।"

इकबाल को तो मौके की ही तलाश थी, "ऐसे ही तुम लोग अपनी ड्यूटी करते हो ? अगर नियम यही है कि मुझे हथकड़ी डालकर ही ले जाना है तो लगाते क्यों नहीं ? और रहा पहचाने जाने का डर ? तो मुझे कोई फिक्र नहीं । मैं कोई चोर या डाकू नहीं हूँ । पॉलिटिकल वर्कर हूँ । मैं इसी तरह गाँव से गुजरूँगा, ताकि लोगों को भी पता चल जाए कि पुलिस उन लोगों के साथ कैसा बर्ताव करती है जो उसे अच्छे नहीं लगते ।"

उनमें से एक सिपाही यह सुनकर भड़क उठा। तुर्शी से बोला, "बाबू जी, [illegible] के साथ [illegible]र्शी से पेश आ रहे हैं। आप से जी-जी करके बात कर र[illegible] और [illegible]क सिर पर ही चढ़े जा रहे हैं! हम आप से सौ बार कह चुके [illegible] सिर्फ अपना फर्ज निभा रहे हैं और आप तो ऐसे कर रहे हैं जै[illegible] जाती दुश्मनी हो!" अपने साथी की ओर मुड़कर उस[illegible] कहा, "प[illegible]कड़ियाँ! और करने दो जो करना चाहे अपने चेहरे का। मेरा ए[illegible]ोता तो मैं जरूर ढँक लेता उसे। हम लोग यही रिपोर्ट देंगे कि इ[illegible]ने चेहरा ढँकने से इनकार कर दिया।"

अपने इस उपहास का इकबाल को तुरत-फुरत कोई जवाब नहीं सूझा। अपने तोते जैसी मुड़ी हुई नाक के प्रति वैसे भी वह हमेशा सचेत रहा करता था। अनिच्छा से उसने अपनी हथेली के पृष्ठभाग से नाक को पोंछा। अपनी शक्लोसूरत के बारे में कटाक्ष सुनकर वह एकाएक ही पस्त हो गया था।

सिपाही की बेल्ट से लगी हथकड़ी में उसके हाथ बँधे थे। चलते-चलते वह मीत सिंह से बोला, "सत श्री अकाल! भाई जी! मैं जल्दी ही लौटूँगा।"

"सत श्री अकाल इकबाल सिंह जी। गुरु आपकी रक्षा करें। सत श्री अकाल, संतरी जी!"

"सत श्री अकाल!"

चाय की केतली हाथ में थामे खड़े मीत सिंह को वहीं छोड़ वे तीनों गुरुद्वारे के अहाते से बाहर निकल आए।

इधर इकबाल को गिरफ्तार करने दो सिपाही आए तो उधर जगत सिंह को पकड़ने सिपाहियों का पूरा का पूरा एक जत्था भेजा गया। सिपाहियों ने उसके घर को चारों तरफ से घेर लिया। घर के सामने, पिछवाड़े और पड़ोस के घरों की छतों पर बंदूकों से लैस सिपाहियों को तैनात किया गया। छह और सिपाही पिस्तौलें लिए आँगन में दौड़े। सिर से पाँव तक मैली-कुचैली सफेद चादर ताने जगत सिंह अपनी चारपाई पर पड़ा जोर-जोर से खर्राटे ले रहा था। एक दिन और दो रातें उसने जंगल में भूखे-प्यासे बिताई थीं। सबेरे-सबेरे गाँव में सब सोए पड़े होंगे, यही सोचकर वह बहुत तड़के ही घर आया था। पर पड़ोसी चौकन्ने थे, सो उसके आते ही लोगों ने पुलिस में खबर

कर दी । जग्गे को उन्होंने खा- पीकर गहरी नींद सो जाने दिया था । उसकी माँ भी बाहर से कुंडी लगाकर कहीं चली गई थी ।

सोते हुए जग्गे के दाएँ हाथ में हथकड़ी और ... याँ डाल दी गई । सिपाहियों ने पिस्तौलें वापस अपने खोलों में ... ाले सिपाही भी आँगन में आ गए और बंदूकों के कुंदों से ज...

"ओ, जग्गा, उठ, दोपहर चढ़ आई..."

"देखो तो, कैसे सुअर की तरह बे... र सोया पड़ा है ।"

जग्गा आँखें मिचमिचाता थका- थका सा उठकर बैठ गया । हाथों और पैरों की बेड़ियों को उसने किसी दार्शनिक की- सी उदासीनता से देखा और फिर बाँहें अकड़ाकर लंबी जमुहाई लेने लगा । उसका सिर डोल- सा रहा था । उसे फिर से नींद आती जा रही थी ।

जगत सिंह की माँ भीतर लौटी तो उसने देखा कि आँगन सिपाहियों से भरा पड़ा है । उसका बेटा बँधे हुए हाथों पर सिर को टिकाए आँखें मूँदे चारपाई पर बैठा था । वह दौड़कर उसके पास पहुँची और उसके घुटने थामकर रोने लगी ।

जगत सिंह की तंद्रा टूटी । उसने अपनी माँ को रुखाई से परे किया और बोला, "तू क्यों रो रही है ? तू तो जानती है कि मेरा डकैती से कोई लेना- देना नहीं ।"

वह फिर रोने लगी, "इसने नहीं किया ! इसने कुछ नहीं किया ।"

"तो कत्ल की रात यह कहाँ था ?" हवलदार ने पूछा ।

"यह तो अपने खेतों में था । यह डाकुओं के साथ नहीं था । मैं सौगंध उठाकर कहती हूँ कि यह उनके साथ नहीं था ।"

"इस बदमाश को ऑर्डर मिला है कि शाम के बाद गाँव से बाहर न जाए । हमें तो इस बात के लिए इसे गिरफ्तार करना ही है कि यह बिना बताए गाँव से बाहर चला गया ।" उसने अपने आदमियों को घर की तलाशी लेने का आदेश दिया, "कमरों और खलिहान की तलाशी लो ।" हवलदार को भी शायद शक ही था कि जग्गा अपने ही गाँव में हुई डकैती में शामिल हुआ होगा ।

चार सिपाही घर की तलाशी लेने में जुट गए । स्टील के बक्से, टिन

सभी; उन्होंने छान मारे। भूसे के ढेर को भी उन्होंने नहीं छोड़ा। सारे आँगन में भूसा ही भूसा बिखर गया। भूसे के ढेर में से भाला तो उन्होंने खोज ही निकाला।

"तो यह [illegible] तुम्हारे चाचे ने लाकर गाड़ दिया। हैं ?" हवलदार ने उसकी माँ [illegible] होकर तीखी आवाज में कहा। फिर सिपाहियों से बोला, "[illegible] का क[illegible] लो। हो सकता है कहीं खून के धब्बे- वब्बे लगे हों।"

"इसमें कुछ नहीं लगा," माँ ने चौंकते हुए कहा, "कुछ नहीं। यह तो खेती को बरबाद करनेवाले जंगली सुअरों को मारने के लिए यह भाला रखता है। जग्गा बिल्कुल बेकसूर है।"

"हम लोग देख लेंगे", हवलदार ने उसे टालते हुए कहा, "तुम इसकी बेगुनाही के सबूत का जोगाड़ करके रखो। मजिस्ट्रेट के सामने पेश करना होगा।"

बुढ़िया ने विलाप करना बंद किया। उसके पास सबूत था—टूटी हुई काँच की चूड़ियों का पैकिट। उसने जग्गा को इसके बारे में पहले इसलिए नहीं बताया था कि अगर उसने बता दिया होता तो जग्गा अपनी इस बेइज्जती से पागल हो जाता और किसी न किसी को धर दबोचता। अभी तो वह बेड़ियों में जकड़ा था। हद से हद क्रोध ही कर सकता था।

"रुको, भाई सिपाही ! मेरे पास सबूत है।"

सिपाहियों ने देखा कि औरत भीतर गई और अपने स्टील के बक्से के अंदर से एक पैकेट निकालकर ले आई। उसने लिपटा भूरा कागज खोला। सुनहरी दानोंवाली लाल और नीली चूड़ियों के टुकड़े थे। सिर्फ दो चूड़ियाँ ही साबुत बची हुई थीं।

"यह क्या सबूत हुआ ?"

"डाकुओं ने कत्ल के बाद इन्हें हमारे आँगन में फेंका था। उन्होंने साथ न देने के कारण जग्गा की बेइज्जती की थी। देखो !" उसने हाथ आगे बढ़ाया, "देखो, मेरी उमर क्या ये काँच की चूड़ियाँ पहनने की है ? वैसे भी ये मेरी कलाई के वास्ते छोटी हैं।"

"तब तो जग्गा जरूर डाकुओं को जानता होगा। चूड़ियाँ फेंकते हुए

उन्होंने क्या कहा ?” हवलदार ने पूछा।

“नहीं, उन लोगों ने कुछ नहीं कहा। वे तो जग्गे को गालि[illegible] रहे थे… ”

“तुम अपना मुँह कभी बंद नहीं रखोगी ?” ज[illegible] में भरकर टोका और फिर हवलदार से कहा, “मुझे नहीं [illegible] थे। मैं तो सिर्फ इतना ही जानता हूँ कि मैं उनके साथ [illegible]”

“तो ये चूड़ियाँ तुझे किसने भेजीं ?” [illegible] मुस्कराते हुए हवलदार ने अपने हाथ पर फैले चूड़ियों के टुकड़े उसके आगे कर दिए।

जग्गे का गुस्सा अब बस में नहीं रहा था। अपनी बँधी हुई मुट्ठियों को उसने पूरे जोर से ऊपर उठाया और हवलदार के हाथों पर ठोंकते हुए कहा, “कौन माँ का यार मुझे चूड़ियाँ भेज सकता है ? कौन … ?”

सिपाहियों ने जगत सिंह को घेर लिया और बूटों, घूँसों से मारने लगे। कूल्हों के बल बैठा जग्गा सिर पर होते वारों को हाथों से रोकने की कोशिश कर रहा था। उसकी माँ अपना माथा पीट-पीटकर रोने लगी। पुलिस का घेरा तोड़कर वह अपने बेटे के पास पहुँची और उसको ढकने लगी—

“इसको मत मारो। गुरु का कोप पड़ेगा तुम लोगों पर। मेरा पुत्तर बेकसूर है। सारा कसूर मेरा है। मारना है तो मुझे मारो !”

उन्होंने जग्गा को पीटना बंद कर दिया। हवलदार ने अपनी हथेली में गड़े काँच के टुकड़े निकाले और रूमाल से लहू पोंछने लगा। बुढ़िया की ओर देखते हुए उसने कड़वाहट से कहा, “तू अपने पुत्तर की बेकसूरी का सबूत अपने पास ही रख, हम इस कुतिया के पुत्तर से अपने ही तरीके से सफाई उगलवाएँगे। जब चूतड़ पर कोड़े पड़ेंगे ना, तभी बोलेगा यह। ले चलो इसे।”

पैरों में बेड़ियाँ और हाथों में हथकड़ियाँ पहने जगत सिंह के चेहरे पर जाते वक्त माँ के प्रति रत्ती-भर भी फिक्र नजर नहीं आ रही थी। बस माँ ही अपना माथा और छातियाँ पीट-पीटकर रोती जा रही थी। चलते-चलते जग्गा ने इतना ही कहा, “मैं जल्दी लौट आऊँगा। गाँव से बाहर जाने और भाला रखने की वे मुझे ज्यादा सजा नहीं दे सकते। हद से हद महीना, दो महीना। सत श्री अकाल !”

जग्गा जितनी जल्दी गुस्से में आया था, उतनी ही जल्दी उससे उबर भी अ[illegible] अपनी चौखट लाँघते ही वह चूड़ियोंवाली बात और मारपीट का किस्सा जैसे [illegible] या। सिपाहियों के प्रति उसके मन में तनिक भी मलाल नहीं दिख [illegible] वह यही समझता था कि वे लोग आम इंसानों जैसे थोड़े ही थे। उ[illegible] ार के लिए कोई जगह थी, न दोस्ती या दुश्मनी के लिए। इन वर्दी[illegible] जितना दूर रहो, उतना ही भला।

जगत सिंह का चे[illegible] ने, ना ढँकने से कोई फर्क नहीं पड़नेवाला था। सारा गाँव उसे जानता था। हथकड़ियोंवाले हाथ उठा- उठाकर गाँववालों को दुआ- सलाम करता वह बढ़ा चला जा रहा था। पैरों की बेड़ियों के कारण उसे पैर फैला- फैलाकर धीरे- धीरे चलना पड़ रहा था। मूँछों को मरोड़ी देते, पुलिसवालों के साथ गंदे मजाक करते जग्गे की चाल से बेपरवाह बाँकपन झलक रहा था।

नदी के करीब पहुँचने पर उसकी मुठभेड़ इकबालवाले दल के साथ हुई। वे सब एक साथ पुल की ओर बढ़ने लगे। हैड- कांस्टेबल आगे- आगे, बंदूकोंवाले सिपाही कैदियों के अगल- बगल और पीछे। उनके खाकी और लाल रंगों के यूनीफार्मों के बीच इकबाल तो कहीं दिख ही नहीं रहा था। पर चौड़े कंधों, लंबी- चौड़ी कद- काठी का जगत सिंह सिपाहियों की पगड़ियों के ऊपर सिर निकाल रहा था। घोड़ों के जलूस में जैसे कोई ऊँचा चौड़ा हाथी किसी समारोह में शामिल होने के लिए सज- सँवरकर घुँघरू बजाता निकला हो।

कोई भी बात करने के मूड में नहीं था। सिपाहियों को भी अटपटा लग रहा था। वे जानते थे कि वे गलती कर रहे थे और वह भी एक नहीं, दो- दो। एक सामाजिक कार्यकर्ता को गिरफ्तार करना बड़ी भारी गलती थी और इससे कोई भी गड़बड़ी हो सकती थी। बात करने का उसका आक्रामक अंदाज ही बता रहा था कि वह बेकसूर था। अब तो उसके विरुद्ध कोई अभियोग गढ़ना ही पड़ेगा। पढ़े- लिखे लोगों के साथ ऐसा करना भी एक टेढ़ी खीर थी। जगत सिंह का तो खैर ठीक ही था। इसने तो कानून तोड़ा ही था, रात के वक्त गाँव से बाहर जाकर। पर इस बात में निश्चय ही उन्हें संदेह था कि अपने ही गाँव में हुई डकैती में यह डाकुओं के साथ होगा। और अगर होता तो इसकी लंबी कद- काठी के कारण ही गाँववालों ने भी इसे पहचान लिया होता। इकबाल और जगत सिंह ने पहली बार

एक-दूसरे को देखा था, यह तो जग-जाहिर था ही।

इकबाल के आत्मसम्मान को भारी ठेस लगी थी। जगत सिंह [illegible] मिलने के पहले तक वह सिर्फ यही सोच रहा था कि उस [illegible] राजनैतिक गतिविधियों के कारण गिरफ्तार किया गया था। उसने [illegible] पहनने की जिद इसीलिए की थी कि गाँववालों को उसकी [illegible] चल जाए। नागरिक स्वतंत्रता के ऐसे घोर अपमान को देखक[illegible]त हो उठेंगे। लेकिन यहाँ तो लोग बुद्धुओं की तरह उसे घूर रहे थे। [illegible] घूंघट की ओट से देखती एक-दूसरे से फुसफुसाकर पूछ रही थीं, "यह कौन है?" जगत सिंहवाले जत्थे से मिलने के बाद ही उसे समझ में आया कि क्यों पुलिसवालों ने उसे मुँह ढँकने को कहा था। उसे भी लाला रामलाल के कत्ल के मुतल्लिक गिरफ्तार किया गया था। ऐसी बेहूदी बात पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। सभी को पता था कि वह कत्ल के बाद ही मनो-माजरा में आया था, बल्कि यों कहें कि उसी गाड़ी से आया था जिसमें ये पुलिसवाले आए थे। ये सिपाही ही गवाह थे कि वह कत्ल के वक्त गाँव में नहीं था। इससे बेतुकी बात और क्या होगी? पर पंजाबी पुलिसवाले कभी अपनी गलती नहीं मानते। ये कोई भी इल्जाम गढ़ सकते हैं—आवारागर्दी का ही अभियोग लगा दें या कि कह दें कि पुलिस के काम में अड़चन डाल रहा था या ऐसी ही कोई भी मनगढ़ंत बात! पर वह इनसे टक्कर लेगा, जी-जान से लेगा।

लेकिन जगत सिंह को ऐसी कोई फिक्र नहीं थी। वह इससे पहले भी गिरफ्तार होता रहा था। उसने जेलों में भी उतना ही वक्त बिताया था, जितना घर में। पुलिस के साथ उसका पुश्तैनी नाता था। पिता आलम सिंह जिंदा था तो उसका नाम भी पुलिस के 10 नंबर के रजिस्टर में था। आलम सिंह पर तो डकैती और कत्ल का इल्जाम साबित हुआ था और उसे फाँसी लगी थी। जगत सिंह की माँ को वकील करने के लिए अपनी सारी जमीनें गिरवी रखनी पड़ी थीं। जगत सिंह को जमीन वापस छुड़ाने के लिए पैसे चाहिए थे और उसने बरस-भर के भीतर उनका बंदोबस्त भी कर लिया था। कोई प्रमाणित नहीं कर सकता था कि वह पैसा कहाँ से लाया था, पर उसी साल के अंत में पुलिस ने उसको पकड़ लिया था। तभी से उसका नाम भी 10 नंबर के रजिस्टर में दर्ज हो गया था और सरकारी तौर पर वह गुंडा घोषित कर दिया गया था। पीठ पीछे उसे सब 10 नंबरी ही

कहा करते थे।

...त सिंह अपने साथी कैदी को बार- बार देख रहा था। वह उससे वार्तालाप ... चाहता था, पर इकबाल अपनी नाक की सीध में तकता ऐसे चल ... से कोई नया- नया एक्टर कैमरे को देखकर सचेत हो रहा हो। जगत ... र नहीं रहा गया। वह मुस्कराते हुए पूछ ही बैठा, "किस गाँव के रह... ?"

इकबाल ने जवा... बिना मुस्कराए ही ऊपर देखा, "मैं गाँव का रहनेवाला नहीं हूँ। दिल्ली से आया हूँ। मुझे यहाँ किसानों को संगठित करने के लिए भेजा गया था। पर सरकार नहीं चाहती कि लोग संगठित हों।"

जगत सिंह का लहजा बदल- सा गया। उसने विनम्रता से पूछा, "मैंने सुना है कि अब हमारा अपना राज्य हो गया है। दिल्ली में अब महात्मा गाँधी की सरकार है। क्यों ? हमारे गाँव में तो सब यही कहते हैं !"

"हाँ, अंग्रेज चले गए हैं और हिंदुस्तानियों ने उनकी जगह ले ली है। लेकिन तुम्हें और तुम्हारे और गाँववालों को आजादी से क्या मिला ? ज्यादा ख़ाने को मिला या और पहनने को ? तुम तो अब भी उन्हीं बेड़ियों में जकड़े हो जिनमें अंग्रेजों ने तुम्हें बाँधा था। तो हमें साथ मिलकर उठना है। और साथ उठने में हमारा कुछ नहीं जाएगा, सिवाय इन बेड़ियों के।" इकबाल ने अपनी बात पर जोर देते हुए हथकड़ियोंवाले हाथों को यों ऊपर झटका जैसे कि वे सचमुच टूट ही जाएँगी।

सिपाहियों ने एक- दूसरे की ओर देखा।

जगत सिंह ने अपने टखनों में पड़ी बेड़ियों और हथकड़ियों से जुड़ी लोहे की छड़ों पर नजर डालते हुए कहा, "मैं तो एक बदमाश हूँ। कोई भी सरकार हो, मुझे तो सबने ही जेल में डालना है।"

"लेकिन", इकबाल ने गुस्से से टोका, "तुम्हें बदमाश किसने बनाया ? सरकार ने ! यह कानून बनाती है और इन्हें लागू करने के लिए सिपाहियों को, जेलरों को रखती है, रजिस्टर मेनटेन करती है। जो लोग इनके मन- मुताबिक नहीं होते उनके लिए यह ऐसे कानून बनाती है जिनका उल्लंघन करने को वे लोग मजबूर हो जाते हैं। ये कानून ही उन्हें अपराधी बनाते हैं। हाँ, तो मैं क्या कह रहा था कि ..."

"नहीं, बाबू साहिब", जग्गा ने खुशमिजाजी से कहा. "हमारी [illegible]मत में यही बदा है। हमारे माथे की रेखाओं और हाथ की [illegible] यही लिखा है। मैं हमेशा कुछ न कुछ करना चाहता हूँ। जब खेतों [illegible]तने होते हैं या कटाई करनी होती है तो मैं काम में मगन [illegible] जब कोई काम नहीं होता, तो भी मेरे हाथों में कुछ न कुछ [illegible] लिए खुजली होती रहती है। ऐसे में ही मैं कुछ उल्टा-सीधा कर [illegible] हूँ।"

जत्था पुल के नीचे से गुजरकर रेस्ट हाउस में पहुँचा। जगतसिंह के आत्मतोष ने इकबाल को निरुत्साहित कर दिया था। गाँव के एक बदनाम गुंडे के साथ वह अपना सिर खपाना नहीं चाहता था। अपना भाषण वह मजिस्ट्रेट के लिए ही बचाकर रखना चाहता था। अंग्रेजी में ही उससे बात करेगा। उसके बोलने का लहजा देखकर ही चकरा जाएगा वह।

पुलिस कैदियों को लेकर सब-इंस्पेक्टर के पास पहुँची तो उसने उन्हें नौकरों के क्वार्टरों में ले जाने का आदेश दिया। मजिस्ट्रेट साहब अपने कमरे में तैयार हो रहे थे। हैड कांस्टेबल कैदियों को अपने आदमियों के पास छोड़कर बँगले में वापस लौट आया।

सब-इंस्पेक्टर ने तनिक चिंतित स्वर में हवलदार से पूछा, "यह नाटा-सा आदमी जो तुम पकड़कर लाए हो, कौन है?"

"उसे तो आपके ही आदेश पर गिरफ्तार किया गया है। यही वह अजनबी है जो गुरुद्वारे में ठहरा हुआ था।"

उसके जवाब से सब-इंस्पेक्टर कुछ नाराज-सा हुआ दिखा, "लगता नहीं है कि तुम्हारे पास अपना भी कोई दिमाग है। जरा-सा काम तुमको सौंपो तो तुम अपना उल्लू बना आते हो। गिरफ्तार करने से पहले उसको देखना तो चाहिए था। यह वही आदमी नहीं है जो कल हमारे साथ ही ट्रेन से उतरा था?"

"ट्रेन से?" हैड-कांस्टेबल ने अनजान-से दिखते हुए पूछा, "मैंने तो इसे ट्रेन में नहीं देखा। यह गाँव में आवारागर्दी कर रहा था। सो शक की बिना पर इसे गिरफ्तार करके मैंने तो आपके हुक्म की ही तामील की है।"

सब-इंस्पेक्टर का गुस्सा तेज हो गया, "गधा !"

हैड-कांस्टेबल ने मुँह फेर लिया।

“[illegible]ा कहीं का”, सब-इंस्पेक्टर ने और अधिक फुफकारते हुए कहा, “तुम्हारे पास [illegible] नाम की चीज बिल्कुल नहीं है क्या ?”

“गरी[illegible] मेरा कसूर क्या है जो … ”

“शट-[illegible]

हैड-कांस्टेबल [illegible]रों की तरफ देखने लगा। सब-इंस्पेक्टर का गुस्सा धीरे-धीरे ठंडा हु[illegible]। उसे भी तो हुकुमचंद को मुँह दिखाना था, जिन्होंने सारा मामला उसके ऊपर ही छोड़ रखा था। थोड़ी देर सोच-विचारकर सब-इंस्पेक्टर ने जाली के दरवाजे से भीतर झाँका।

“क्या मैं अंदर आ सकता हूँ ?”

“आओ, आओ, इंस्पेक्टर साहब”, हुकुमचंद ने कहा, “तकल्लुफ में क्यों वक्त जाया कर रहे हो !”

सब-इंस्पेक्टर ने भीतर घुसकर सलाम ठोंका।

“हाँ, तो क्या कर डाला ?” दाढ़ी बनाकर क्रीम मलते-मलते मजिस्ट्रेट ने पूछा। पास ही ड्रेसिंग टेबल पर धरे पानी के गिलास में एक सफेद टिकिया नाचती हुई ऊपर की ओर बुलबुले फेंक रही थी।

“सर, आज हमने दो गिरफ्तारियाँ की हैं। एक तो बदमाश जग्गा है। डकैतीवाली रात वह अपने घर से बाहर था। उससे कुछ न कुछ सुराग जरूर मिल जाएगा। और दूसरा वह अजनबी है जिसके बारे में मुखिया ने हमें खबर की थी और जिसे पकड़ने के लिए आपने आदेश दिया था।”

हुकुमचंद ने दाढ़ी मलना बंद किया। वह समझ गया था कि इस दूसरी गिरफ्तारी को उसके मत्थे मढ़ने की चाल चली जा रही थी।

“कौन है वह ?”

सब-इंस्पेक्टर ने बाहर खड़े हैड-कांस्टेबल को आवाज लगाई, “उस आदमी का क्या नाम है जिसको तुमने गुरुद्वारे से पकड़ा है ?”

“इकबाल।”

“इकबाल क्या ?” मजिस्ट्रेट ने जोर से पूछा।

“अभी पता लगाता हूँ, सर !” मजिस्ट्रेट के बरसने से पहले ही हवलदार नौकरों के क्वार्टरों की तरफ दौड़ा। हुकुमचंद का पारा चढ़ने लगा था।

उन्होंने अपने गिलास से एक घूँट भरा। सब-इंस्पेक्टर परेशान-[illegible] खड़ा रहा। कुछ देर बाद हवलदार ने खँखारकर अपने आने [illegible]ना दी।

"सर," उसने फिर से खाँसा, "सर, यह आदमी पढ़ा[illegible]गता है।"

मजिस्ट्रेट गुस्से से दरवाजे की ओर मुड़ा, "[illegible] हैं कि नहीं उसके? कोई जाति, कोई धर्म तो होगा उसका [illegible] लिखा है। हंह!"

"सर", हवलदार ने हकलाते हुए कहा, "वह अपने बाप का नाम बताने से मना कर रहा है और कहता है कि उसका कोई धर्म-वर्म नहीं है। कहता है कि आपसे ही बात करेगा!"

"जाओ, देखो क्या कहता है?" मजिस्ट्रेट ने गुर्राकर कहा, "चूतड़ पर कोड़े लगाओ जब तक बोले नहीं! जाओ ''' अच्छा रुको! तुम रहने दो। सब-इंस्पेक्टर साहब देखेंगे उसे!"

एक लंबे डकार ने उनके गुस्से का शमन किया।

"बड़े अच्छे लोग हो, तुम और तुम्हारे सिपाही? क्यों? तुम लोग जाकर लोगों को उनका नाम, पता, जाति-पाँति जाने बिना ही गिरफ्तार कर लाते हो। मुझसे गिरफ्तारी के कोरे वारंट साइन कराकर ले जाते हो। किसी दिन तुम गवर्नर को भी पकड़ने पहुँच जाओगे और कहोगे कि हुकुमचंद ने ऑर्डर दिया था। तुम लोग मुझे नौकरी से डिसमिस कराकर रहोगे।"

"सर, मैं खुद जाकर मामले की तहकीकात करता हूँ। यह आदमी कल ही मनो-माजरा में आया है। मैं जाकर इसके बारे में पूरा पता लगाता हूँ और यह भी कि यह किस मकसद से यहाँ आया था?"

"ठीक है, जाओ और पता लगाओ। यहाँ खड़े-खड़े मेरा मुँह मत ताको।" क्रोध करना या रुखाई से बात करना उनकी आदत नहीं थी, पर इस मामले में हुकुमचंद अपनी बौखलाहट को नहीं दबा पा रहे थे।

सब-इंस्पेक्टर के जाने के बाद उन्होंने आइने में अपनी जीभ का मुआयना किया और पानी के गिलास में सेल्ज़र की एक टिकिया और छोड़ दी।

सब-इंस्पेक्टर ने बाहर निकलकर लंबी साँस ली। मजिस्ट्रेट का गुस्सा उसके प्रति उनके दृष्टिकोण को बदल सकता था। इस ढुलमुल स्थिति से उबरने के लिए उसे कड़े कदम उठाने होंगे। वह नौकरों के क्वार्टरों में पहुँचा। इकबाल और

उसके साथ के सिपाही जगतसिंह वाली टोली से हटकर खड़े थे। नौजवान के सम्मान को ठेस [illegible] लगती थी। सब-इंस्पेक्टर ने उससे बात करना उचित नहीं समझा। उस [illegible] सिपाही से कहा, "इस आदमी के कपड़ों की तलाशी लो। किसी कमरे में ल [illegible] को नंगा करो। मैं खुद ही आकर जाँच करूँगा।"

इकबाल ने मजि [illegible] सामने जो भाषण देने की सोची थी, धरा का धरा रह गया। सिपाही उसको हथकड़ियों से लगभग खींचते हुए दूसरे कमरे में ले गया। प्रतिरोध करने की क्षमता भी अब उसमें नहीं बची थी। अपनी कमीज उतारकर उसने सिपाही को सौंप दी। सब-इंस्पेक्टर भीतर आया और कमीज की जाँच की परवाह किए बगैर आदेश देने लगा—

"अपना पायजामा उतारो !"

इकबाल ने स्वयं को अपमानित अनुभव किया। लेकिन, उसमें अब और लड़ने की ताकत नहीं बची थीं। बोला, "पायजामे में जेबें नहीं हैं। इसमें कुछ भी छुपाया नहीं जा सकता।"

"उतारो, और जुबान लड़ाना बंद करो।"

सब-इंस्पेक्टर ने अपनी फौजी छड़ी को अपनी खाकी पतलून पर थपथपाते हुए जोर देकर आदेश को दोहराया।

इकबाल ने पायजामे का नाड़ा ढीला किया। पायजामा उसके टखनों के गिर्द ढेर हो गया। कलाइयों में पड़ी हथकड़ियों को छोड़ उसके बदन पर और कुछ नहीं बचा था। पायजामे से बाहर निकल वह मुआयने के लिए आगे बढ़ा।

"ठीक है, ठीक है", सब-इंस्पेक्टर बोला, "जो मैंने देखना था, देख लिया। अब तुम कपड़े पहन सकते हो ! तुमने बताया कि तुम सोशल वर्कर हो ! मनो-माजरा में क्या काम था तुम्हें ?"

"मुझे मेरी पार्टी ने भेजा था।" पायजामे का नाड़ा कसते हुए इकबाल ने उत्तर दिया।

"कौन-सी पार्टी ?"

"पीपुल्स पार्टी ऑफ इंडिया !"

सब-इंस्पेक्टर ने उसकी तरफ वक्र मुस्कान फेंकते हुए देखा, "पीपुल्स पार्टी ऑफ इंडिया ! हर शब्द पर जोर देते हुए उसने एक बार फिर दोहराया,

"पक्का ? कहीं मुस्लिम लीग तो नहीं !"

इकबाल को प्रश्न के महत्व की खबर नहीं थी।

"नहीं, मुस्लिम लीग का सदस्य मैं क्यों होऊँगा भला ? मैं ... "

इकबाल के बात पूरी करने के पहले ही सब-इंस्पेक्टर कमरे से बाहर जा चुका था।

उसने सिपाहियों को आदेश दिया कि कैदियों को पुलिस स्टेशन ले जाएँ। स्वयं वह मजिस्ट्रेट को अपनी छानबीन से अवगत कराने रेस्ट हाउस की ओर वापस लौटा। उसके चेहरे पर एक जी-हजूरिया मुस्कान तैर रही थी।

"गरीब परवर, सब ठीक है ! वह बता रहा है कि उसको पीपुल्स पार्टी ने यहाँ भेजा है। पर मुझे पक्का विश्वास है कि वह मुस्लिम लीग का आदमी है। वैसे भी दोनों पार्टियों में खास फर्क तो है नहीं। सरहद के इतने करीब आकर अगर वह किसी खुराफात में लगा था, तो भी तो हमें उसे पकड़ना ही था। हम उस पर कोई भी अभियोग लगा सकते हैं।"

हुकुमचंद ने गिलास के पेंदे में जमा सफेद चूर्ण को हिलाया और सेल्ज़र के बचे हुए पानी को धीरे-धीरे गटक लिया। खाली गिलास में टकटकी लगाए कुछ सोचते हुए से वह बोले, "गिरफ्तारी का वारंट सही-सही भरना। जैसे नाम—मोहम्मद इकबाल। सुपुत्र—मोहम्मद फलाँ-फलाँ या पिता का नाम—मालूम नहीं। जाति—मुसलमान, पेशा—मुस्लिम लीग का कार्यकर्ता।"

सब-इंस्पेक्टर ने बड़ी नाटकीयता से सलाम ठोंका।

"ठहरो, ठहरो, अधूरा काम मत छोड़ो ! अपनी पुलिस डायरी में दर्ज करो कि रामलाल के हत्यारों को अभी पकड़ा नहीं जा सका। लेकिन उनका सुराग शीघ्र ही मिलने की संभावना है। तुमने ही तो कहा था न कि इसमें जग्गा कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है !"

"जी सर, डाकुओं ने जाने से पहले जग्गे के आँगन में चूड़ियों का बंडल फेंका। साफ जाहिर है कि उसने उनका साथ देने से इनकार किया होगा।"

"वेल, उससे उन डाकुओं के नाम उगलवाओ। जरूरत पड़े तो पीटो भी।"

सब-इंस्पेक्टर मुस्कराया, "सर, मैं चौबीस घंटे के अंदर ही उससे डाकुओं के नाम उगलवाता हूँ और वह भी बिना मार-पीट के!"

"हाँ, हाँ, जैसे भी तुम चाहो, पर पता लगाओ", हुकुमचंद ने अधीरता से कहा, "और आज की पुलिस स्टेशन की डायरी में भी इन दोनों गिरफ्तारियों को दर्ज करो। पर ख्याल रहे, अलग-अलग सफों पर करना और बीच में दूसरी वारदातों की रपट दे देना। देखो, और कोई गड़बड़-घोटाला नहीं होना चाहिए।"

सब-इंस्पेक्टर ने फिर सैल्यूट मारा, "मैं पूरी एहतियात बरतूँगा, सर!"

इकबाल और जग्गा को एक ताँगे में बैठाकर पुलिस स्टेशन ले जाया गया। इकबाल को ससम्मान अगली सीट पर बीच में बैठाया गया था। ताँगेवाला खुद अपनी सीट छोड़कर घोड़े के बगल में ताँगे की कमानी पर बैठा था। जगतसिंह को दो सिपाहियों के बीच पीछेवाली सीट पर बैठाया गया। रेलवे लाइन के साथ-साथ जाती धूलभरी कच्ची सड़क पर ताँगा बढ़ा जा रहा था। निश्चिंत होकर कोई बैठा था तो वह जग्गा था। सिपाहियों से उसका पूर्व-परिचय था और सिपाही भी उसे जानते थे। परिस्थितियों से भी तो वह नावाकिफ नहीं था।

"आजकल तो थाने में काफी कैदी होंगे?" उसने पूछा।

"नहीं, अभी तो एक भी नहीं है", एक सिपाही बोला, "दंगाइयों को हम लोग नहीं पकड़ रहे, उनको सिर्फ तितर-बितर कर देते हैं। और दूसरे अपराधी की छानबीन करने के लिए वक्त ही कहाँ है आजकल किसी के पास। पिछले सात दिनों में सिर्फ तुम दोनों की ही गिरफ्तारी की है हमने! जेल की दोनों कोठरियाँ खाली पड़ी हैं। दोनों जन एक-एक पूरी की पूरी ले लेना।"

"बाबू जी को ही चाहिए होगी पूरी की पूरी", जग्गा ने पूछा, "क्यों बाबू जी?"

इकबाल ने कोई जवाब नहीं दिया। जग्गा अपमानित-सा हुआ बात बदलकर सिपाही से पूछने लगा, "इस हिंदुस्तान-पाकिस्तान के चक्कर में तुम्हारा काम तो बहुत बढ़ गया होगा?"

"हाँ, इधर मार-काट चल रही है और उधर पुलिस-फोर्स भी आधे से

कम ही रह गई है ।"

"क्यों, क्या ये लोग पाकिस्तान के साथ मिल गए हैं ?"

"पता नहीं, उनके साथ मिल गए हैं या नहीं—इनकार तो करते रहे सब कि उधर नहीं जाना चाहते । आजादीवाले दिन सुपरिंटेंडेंट साहब ने सभी मुसलमान सिपाहियों के हथियार रखवा लिए थे । सब के सब पाकिस्तान भाग गए । उनके इरादे नेक नहीं थे । मुसलमान होते ही ऐसे हैं । इन पर तो कभी भरोसा नहीं किया जा सकता ।"

"हाँ", दूसरे सिपाही ने जोड़ा, "दंगों में इसीलिए हिंदुओं को ज्यादा नुकसान हुआ कि मुसलमान पुलिस ने मुसलमानों का साथ दिया । मुसलमान पुलिस का ऐसा रवैया न होता तो लाहौर के हिंदू लड़कों ने मुसलमानों को मजा चखा दिया होता । पूछो मत कितना जुलुम किया उन लोगों ने !"

"उनकी फौज का भी वही रवैया है । बलूची फौजियों ने जहाँ- जहाँ देखा कि सिख और गुरखा सैनिकों से मुठभेड़ का खतरा नहीं है, वहाँ- वहाँ उन्होंने बेतहाशा मार- काट की ।"

"परमात्मा से वे नहीं बच सकते । परमात्मा के हाथों कोई भी नहीं बच सकता ।" जगत सिंह ने जोर देकर कहा ।

सबने हैरान होकर उसकी तरफ देखा । इकबाल भी अचंभित- सा हुआ उसकी ओर यह देखने के लिए मुड़ा कि क्या सचमुच यह जगत सिंह की ही आवाज थी !

"क्यों बाबू जी, क्या ठीक नहीं है ? आप तो ज्यादा समझदार आदमी हो, आप ही बताओ कि क्या कोई रब्ब के कोप से बच सकता है ?"

इकबाल कुछ नहीं बोला ।

"नहीं, हरगिज नहीं," जगत सिंह खुद ही बोला, "मैं आपको एक बात बताता हूँ, जो एक बार भाई मीत सिंह ने मुझे सुनाई थी । सुननेवाली बात है बाबू जी ! रुपए में बिल्कुल सोलहो आने सच !"

हर रुपया सोलह आने का ही होता है । इकबाल मन ही मन हँसा । जगत सिंह अपनी ही धुन में उसे सुनाता रहा, "भाई ने मुझे बताया कि बलूची सैनिकों से भरा एक ट्रक अमृतसर से लाहौर जा रहा था । जब वे पाकिस्तान की सरहद के करीब पहुँचे तो फौजियों ने सड़क चलते सिखों को संगीनों के कुंदे खुभाने शुरू

किए । पैदल या साइकिल सवारों को देखते ही ड्राइवर ट्रक की रफ्तार धीमी कर देता । पीछे से सैनिक उन्हें छुरे घोंपते और ड्राइवर गाड़ी को भगा ले जाता । ऐसे ही उन्होंने सैकड़ों लोगों को मारा और वे पाकिस्तान की सीमा में घुसने ही वाले थे । सरहद सिर्फ एक मील दूर थी । तभी जानते हो क्या हुआ ?”

“क्या हुआ ?” ध्यान से सुनते हुए एक सिपाही ने पूछा । इकबाल को छोड़ बाकी सभी के कान उधर ही लगे हुए थे । ताँगेवाले ने भी घोड़े पर चाबुक लगाना छोड़कर पीछे देखा ।

“सुनो बाबू जी, इसी [illegible] वाली बात है । इतने में ही एक लावारिस कुत्ता सड़क के बीच दौड़ा । जिस ड्राइवर ने रास्ते में सैकड़ों लोगों के कत्ल करवाए थे, उसी ने एक कुत्ते को बचाने की खातिर ट्रक को तेजी से दाईं तरफ मोड़ा और ट्रक एक पेड़ से जा टकराया । ड्राइवर और दो फौजी तो वहीं मर गए । बाकी के सारे बुरी तरह जख्मी हो गए । अब आप इसे क्या कहोगे ?”

सिपाहियों ने स्वीकृति में सिर हिलाए । इकबाल को चिढ़ मचने लगी । उसने रुखाई से पूछा—

“तो टक्कर किसके कारण लगी ? कुत्ते के कारण या भगवान के ?”

“भगवान के कारण !” एक सिपाही बोला, “जिसको इतने इंसानों को कत्ल करने में मजा मिला हो वह एक लावारिस कुत्ते की अपने ट्रक के नीचे आने की भला क्यों फिक्र करेगा ?”

“तुम ही बताओ ।” इकबाल ने धृष्टता से पूछा ।

जग्गा के सिवा हर एक का मुँह बंद हो गया । ताँगेवाले ने घोड़े को चाबुक मारना शुरू कर दिया । जग्गा ताँगेवाले की तरफ मुड़ा और बोला, “भोला, तुझे क्या परमात्मा का जरा भी खौफ नहीं कि जानवर को इतनी बेरहमी से मारता जा रहा है ?”

भोले ने घोड़े को चाबुक लगाना बंद कर दिया । उसके चेहरे का भाव बता रहा था कि उसे जग्गा की बात अच्छी नहीं लगी थी । जग्गा को क्या ? घोड़ा उसका था, वह चाहे उसे मारे, चाहे तो पुचकारे !

“भोलया, आजकल काम कैसा चल रहा है ?” जग्गा ने सुलह करने की कोशिश करते हुए कहा ।

“रब्ब मेहरबान है”, चाबुक ऊपर उठाते हुए ताँगेवाले ने जवाब दिया

और फिर तुरंत ही कहा, “इंस्पेक्टर साहिब की भी मेहरबानी है, हम लोग जी रहे हैं और रोजी- रोटी बनी हुई है ।”

“क्यों ? पाकिस्तान जानेवाले रिफ़्यूजियों से पैसे क्यों नहीं बनाते ?”

“हाँ- हाँ, पैसों के लिए जान कुर्बान कर देंदा जा, भोला ने गुस्से में आकर कहा, मेहरबानी करो भाई, अपनी सलाह अपने पास रखो । जब भीड़ टूटती है ना तो वो यह नहीं देखती कि तुम हिंदू हो कि मुसलमान, बस जो आगे आया, मारते चलो । थोड़े दिन पहले की बात है । मुसलमान रिफ़्यूजियों का मील- भर लंबा काफिला सड़क पर चला जा रहा था । चार सिख सरदार एक जीप में आए और बिना किसी चेतावनी के अपनी स्टेनगनों से तड़ातड़ गोलियाँ बरसाने लगे । रब्ब ही जानता होगा कितनों को भून डाला उन्होंने । अगर मुसलमानों से भरे मेरे ताँगे को भीड़ ने घेर लिया तो ? पहले तो वे मेरा ही कत्ल करेंगे, फिर पूछेंगे मेरी जात ।”

“कुत्ता इस जीप की पेड़ से टक्कर लगवाने के लिए सामने क्यों नहीं आया ? इकबाल ने व्यंगात्मक स्वर में पूछा ।

वातावरण में एक अजीब- सी चुप्पी छा गई । किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि इस बदमिजाज आदमी को क्या जवाब दे । जग्गा ने ही भोलेपन से पूछा, “बाबू जी, क्या आपको नहीं लगता कि बुरे काम का बुरा ही नतीजा होता है । यह तो कर्म की रीत है । भाई हमेशा यही कहता है । गुरु ने भी ग्रंथ साहब में यही कहा है ।”

“हाँ, यह भी सोलहों आने सच ही होगा ।” इकबाल ने ताना मारते हुए जवाब दिया ।

“अच्छा जी, जैसी आपकी मर्जी”, जग्गा ने अब भी मुस्कराते हुए ही कहा, “आपके खयालात हम जैसे आम लोगों से कैसे मिल सकते हैं ?” और वह पुनः ताँगेवाले की ओर मुड़ा, “भोलया, सुना है लोग बहुत- सी औरतों को जबरदस्ती उठा- उठाकर ले जा रहे हैं और सस्ते में बेच रहे हैं । तू भी अपने लिए क्यों नहीं कोई घरवाली ढूँढ लेता ?”

“क्यों, सरदारा ? अगर जो तुझे बिना खर्चे ही मुसलमानी मिल सकती है तो मैं क्या नामर्द हूँ जो मुझे उठाकर लाई औरत खरीदकर लानी होगी ?”

जग्गा जैसे सोते से जगा । मुँह गुस्से से भभक उठा । ठिठियाकर हँस

रहे सिपाही हक्बकाए से उसे ताकने लगे। भोले को अपनी गलती का अहसास हुआ। उसने स्वर बदलते हुए कहा, "क्यों, जग्गया ? लोगों का तो मखौल बनाते रहते हो। पर जब कोई दूसरा जवाब दे दे तो नाराज हो जाते हो ?"

"अगर हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ न होतीं तो मैंने तेरी हड्डी-पसली एक कर दी होती", जग्गा ने गरजकर कहा, "खुशकिस्मत है तो आज बच गया। पर अगर दोबारा कभी ऐसी बात जुबान पर लाया तो तेरी जुबान न खींच ली तो कहना।" जग्गा ने जोर से थूका।

भोला बुरी तरह सहम गया, "गुस्सा क्यों करते हो, भाई ! आखिर मैंने कहा क्या जो ···?"

"हरामजादा !"

इसके बाद कोई कुछ नहीं बोला। ताँगे में सवार लोगों की अटपटी-सी इस चुप्पी को सिर्फ घोड़े को गरियाती भोला की आवाजें ही बेध रही थीं। गुस्से में भरा जग्गा पता नहीं किन खयालों में खोया था। उसे हैरानी हो रही थी कि उसके गुप्त मिलन की खबरें लोगों को कैसे लगीं। लगता था किसी ने उसे नूराँ से बातें करते देख लिया था। उसी से बात फैली होगी। अगर चंदन नगर का ताँगेवाला तक यह जान गया है तो मनो-माजरा में तो कब से लोग काना-फूसी कर रहे होंगे। जिसके बारे में बातें हो रही हों, उसे ही सबसे बाद में खबर लगती है। शायद इमामबख्श और उसकी बेटी नूराँ को तो अब भी नहीं पता होगा कि लोग क्या-क्या कह रहे थे।

कैदियों और सिपाहियों का जत्था दोपहर तक चंदन नगर पहुँचा। ताँगा शहर से कुछेक फर्लांग की दूरी पर बने पुलिस थाने के बाहर आकर रुका। कैदियों को एक मेहराबदार फाटक से होकर ले जाया गया। फाटक के मेहराब पर बड़े-बड़े अक्षरों में स्वागतम् लिखा हुआ था। पहले उन्हें 'रिपोर्टिंग रूम' में ले जाया गया। हवलदार ने एक भारी-सा रजिस्टर खोला और अलग-अलग पन्नों पर दिन-भर में घटित घटनाओं की रपटें दर्ज कीं। मेज के ठीक ऊपर किंग जॉर्ज छठे की फ्रेम की हुई तस्वीर लटक रही थी। नीचे उर्दू में लिखा था—'घूस लेना जुर्म है।' दूसरी दीवार पर किसी कैलेंडर से फाड़ा महात्मा गाँधी का एक रंगीन चित्र चिपकाया हुआ था। उसके नीचे

भी अंग्रेजी में लिखा था—'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है।' कमरे में लगी बाकी तस्वीरें कुख्यात अपराधियों और फरार मुजरिमों तथा हुए व्यक्तियों की थीं।

घटनाओं के दैनिक विवरणों की प्र[illegible]दाज भरने के बाद कै[illegible] अहाते के इस पार उनकी कोठरियों में ले जा[illegible]। ये कोठरियाँ सिपाहि[illegible] की बैरकों के ठीक सामने अहाते के दूसरी [illegible] पड़ती थीं। चौको[illegible] में अंतिम छोरवाली दीवार रेलवे क्रीपर की [illegible]।

जग्गा के आने से वहाँ उल्लास का वाता[illegible]या था।

"ओए, तू फिर आ धमका! तूने क्या इसे अपनी ससुराल समझ रखा है?" बैरक से एक सिपाही चिल्लाया।

"हाँ और क्या? पुलिसवालों की जितनी लड़कियों को मैंने पटाया है उस हिसाब से तो है ही!" जगत सिंह ने बुलंद आवाज में जवाब दिया। ताँगे में घटित उस अप्रिय प्रकरण को शायद वह भूल चुका था।

"ओए बदमाशा, तू अपनी करतूतों से बाज नहीं आएगा। ठहर, इंस्पेक्टर साहब को पता लगने दे जो तूने अभी-अभी कहा है। तेरी ···में उन्होंने मिर्चें न डलवाईं तो कहना।"

"अपने जँवाइयों के साथ कोई ऐसे नहीं करता!" जग्गा ने ठिठोली जारी रखी।

लेकिन इकबाल के साथ दूसरी ही बात थी। क्षमा-याचना के साथ उसकी हथकड़ियाँ खोल दी गईं। उसकी कोठरी में एक मेज, एक कुर्सी और एक चारपाई डाली गई। हवलदार ने जहाँ-तहाँ से उर्दू और अंग्रेजी की सारी अखबारें और पत्रिकाएँ इकट्ठी करके उसकी कोठरी में भिजवाईं। इकबाल को पीतल की थाली में खाना परोसा गया। चारपाई के पास तिपाई पर उसके लिए एक सुराही और गिलास भी रखा गया। जग्गा की कोठरी में ऐसा कुछ भी नहीं दिया गया। खाना भी उसकी तरफ लगभग फेंककर दिया गया। जग्गा ने हाथ पर रखकर अपनी रोटियाँ खाईं। एक सिपाही ने लोहे की सलाखों के रास्ते चुल्लू में उसे पानी पिलाया। सीमेंट का कड़ा फर्श ही उसका बिछौना था।

कैदियों के साथ इस प्रकार का भेदभावपूर्ण व्यवहार इकबाल के लिए

कोई अचरज की बात नहीं थी । जिस देश में जाति-भेद की परंपरा सदियों से चली आ रही हो वहाँ असमानता एक जन्मजात मानसिक धारणा बन चुकी थी । अगर जातिवाद को कानून द्वारा समाप्त भी कर दिया जाए तो भी इस अन्य प्रकार के [illegible] उभरकर आ जाएगी । दिल्ली के [illegible]यों के [illegible] [illegible]ारियों जैसे पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित वर्ग को ही लें, वे भी [illegible] से अछूते नहीं । उनके कारें रखने के स्थान श्रेष्ठता के हिसाब से अंकित किए जाते हैं । दफ्तरों के कुछ विशेष प्र[illegible] [illegible] अफसर ही आ-जा सकते हैं । यहाँ तक कि शौचालयों को [illegible] अधिकारी, कनिष्ठ अधिकारी, क्लर्क और स्टेनोग्राफर आदि श्रेणियों के आधार पर वर्गीकृत कर दिया जाता है । वर्ग-भेद जहाँ लोगों की मानसिकता का अंग बन चुका हो वहाँ एक ही अपराध के लिए बंदी बनाए गए कैदियों को उनके सामाजिक स्तर के आधार पर अलग-अलग सुविधाएँ दिए जाने को असंगत नहीं माना जा सकता था । इकबाल 'ए' श्रेणी का कैदी था, जबकि जग्गा निम्नतम 'सी' श्रेणी का ।

दोपहर का खाना खाकर इकबाल चारपाई पर लेट गया । जग्गा के कमरे से खर्राटों की आवाजें आ रही थीं, पर इकबाल के अशांत मन में नींद कहाँ ! उसका मन तो घड़ी के उस नाजुक स्प्रिंग की तरह था जो छूने के घंटों बाद तक कंपायमान रहता था । वह उठकर बैठ गया और हवलदार की भेजी अखबारों के ढेर को उलट-पुलटकर देखने लगा । सभी अखबारें उसे एक-सी लगीं—वही खबरें, वही विवरण और लगभग वैसे ही संपादकीय । सुर्खियों को छोड़कर बाकी सबकुछ लगता था, जैसे एक ही हाथ का लिखा हुआ हो । यहाँ तक कि साथ दिए छायाचित्र भी वही के वही । खीजकर उसने वैवाहिक विज्ञापनोंवाला पृष्ठ खोला । इन्हें पढ़ने में कभी-कभी बड़ा मजा आता है । पंजाब के नौजवानों के बारे में छपे विवरण भी खबरों से कम रोचक नहीं होते । सभी को भावी पत्नियों में एक जैसे गुणों की तलाश थी । सभी को कुँआरी कन्याएँ ही चाहिए थीं । कुछेक खुले विचारों के लोगों के लिए विधवाएँ भी चल सकती थीं, बशर्ते उनका कौमार्य भंग न हुआ हो । सभी को गृह कार्य में दक्ष पत्नियों की अपेक्षा थी । किन्हीं-किन्हीं प्रगतिशील और उदारमना लोगों की ओर से जाति और दहेज

के बंधन की छूट दी गई थी । कम ही लोगों ने भावी पत्नियों के चित्र माँगे थे, क्योंकि चमड़ी की सुंदरता से अधिक महत्व हमारे यहाँ अन्य बातों का होता है । ज्यादातर लोगों ने जन्मपत्रियों सहित पत्र-व्यवहार क[illegible]की माँग की थी । खगौलिक सामंजस्य ही मानो [illegible] अंदाज [illegible]गारंटी हो । इक[illegible] ने अखबारों को दे फेंका और पत्रिकाओं को [illegible]या । पत्रिका[illegible] तो अखबारों से भी गई-बीती थीं । सभी में अनि[illegible]जता-की गुफाओं के भित्तिचित्रों के विवरणों जैसे लेख थे । किसी मे[illegible]हिंदुस्तानी [illegible]पकों पर संबंधित, तो किसी में रवींद्रनाथ टैगोर से संबंधित [illegible] । [illegible] प्रे[illegible] की कहानियों पर तो किसी में फिल्म कलाकारों के व्य[illegible] जीवन पर टिप्पणियाँ थीं । इकबाल तंग आकर पुनः लेट गया । उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था । उसे खयाल आया कि वह तीन दिनों से न के बराबर सो पाया था । यह भी तो एक तरह का बलिदान ही था । उसे पार्टी के दफ्तर में अपने बारे में खबर भेजनी चाहिए थी । हो सकता है तब उसे··अखबारों की सुर्खियों में अपनी गिरफ्तारी, रिहाई और नेता के रूप में अपने उदय की खबरों के प्रकाशित होने के ख्वाब देखते-देखते वह नींद की आगोश में समा गया ।

शाम को एक सिपाही इकबाल की कोठरी में एक और कुर्सी लेकर दाखिल हुआ ।

"क्या किसी और को भी इस कोठरी में लाया जा रहा है ?" इकबाल ने सशंकित होते हुए पूछा ।

"नहीं बाबू जी, इंस्पेक्टर साहब आ रहे हैं । आपसे कुछ बातें करना चाहते हैं । बस, आते ही होंगे !"

इकबाल ने जवाब नहीं दिया । सिपाही कुर्सी ठीक स्थान पर रखकर पीछे हट गया । बरामदे से कुछ लोगों के आने की आवाजें आ रही थीं ।

दरवाजे पर सब-इंस्पेक्टर खड़ा दिखाई दिया ।

"अंदर आ सकता हूँ ?"

इकबाल ने सिर हिलाया, "कहिए, इंस्पेक्टर साहब क्या हुक्म है ?"

"हम तो आपके गुलाम हैं, मिस्टर इकबाल ! आप आदेश दीजिए,

हम सेवा में हाजिर हैं !" सब- इंस्पेक्टर ने मुस्कराते हुए कहा । परिस्थितियों के अनु[illegible]र [illegible]वर [illegible] [illegible]र बदल सकने की अपनी पटुता पर उसे गर्व था । [illegible]ी [illegible] [illegible]हते [illegible] ।

स[illegible] "[illegible]े नहीं [illegible] [illegible]त्ल के जुर्म में कैद किए गए लोगों के प्रति [illegible] आप लोग [illegible] हैं । मुझे तो कत्ल के जुर्म में ही कैदी बनाकर [illegible]ंस हैं [illegible] आप लोग [illegible] मुझे नहीं मालूम कि आपके सिपाहियों ने आपको [illegible] कल आपके साथ ही उसी ट्रेन से मनो- माजरा [illegible]ा था, [illegible] सब आए थे ?"

"हमने आप पर कोई इलजाम नहीं लगाया है । वह तो अदालत का काम है । हमने तो आपको सिर्फ शक की बिना पर नजरबंद किया है । सरहदी इलाकों में हम राजनैतिक क्रांतिकारियों को खुली छूट नहीं दे सकते", सब- इंस्पेक्टर ने मुस्कराना जारी रखा, "आप तो पाकिस्तान के रहनेवाले हैं । अपना प्रचार आप वहाँ जाकर क्यों नहीं करते ?"

बात इकबाल को तीर की तरह लगी, पर उसने अपने गुस्से पर नियंत्रण रखने की भरसक कोशिश की, "पाकिस्तान के रहनेवाले से आपका क्या मतलब है, इंस्पेक्टर साहब ?"

"आप मुसलमान हैं । पाकिस्तान में जाइए ।"

"दैट इज़ ए ब्लडी लाई, यह सरासर झूठ है", इकबाल ने भड़ककर कहा, "और बड़ी बात तो यह है कि आप भी जानते हैं कि यह सरासर झूठ है । आपने अपनी बेवकूफी को छुपाने के लिए एक मनगढ़ंत केस बना लिया है ।"

सब इंस्पेक्टर ने तल्खी से जवाब दिया, "आप अपनी जुबान सँभालकर बात कीजिए, मिस्टर इकबाल ! मैं आपके बाप का नौकर नहीं हूँ जो आपके 'ब्लडी' 'ब्लडी' को सह जाऊँगा । आपका नाम इकबाल है और आपकी सुन्नत की हुई है । मैंने खुद आपको देखा है । और फिर मनो- माजरा में आपके होने की आपके पास कोई दलील नहीं है । मैं सोचता हूँ, इतना ही काफी है ।"

"इतना ही काफी नहीं होगा, जब बात अदालत में पहुँचेगी और अखबारों में खबर छपेगी । मैं मुसलमान नहीं हूँ । और मेरे मुसलमान होने

न होने से क्या मतलब ? मैं मनो-मंजीरा में क्यों आया, इससे भी आपका कोई लेना-देना नहीं है। अगर आप मुझे [illegible] घंटे [illegible] रिहा करते तो मैं अदालत में हैबीयस कॉर्पस [illegible] करूँगा और अदालत के सामने बयान [illegible] अंदाजा [illegible] आप लो [illegible] ड्यूटी निभाते हैं।"

"हैबीयस कॉर्पस पेटीशन ?" सब-[illegible] आप काफी लंबे अरसे तक विदेशों में रहे [illegible] जीवन [illegible] तो अभी तक खयाली पुलावों की ही दुनिया [illegible] देखा। [illegible] यहाँ [illegible] सब जान जाएँगे।" सब-इंस्पेक्टर एकाएक उठकर बाहर निकल गया [illegible] लोहे का फाटक बंद कर दिया गया।

बगलवाली जग्गा की कोठरी भी खुलवाई गई।

"सत श्री अकाल, इंस्पेक्टर साहिब !"

सब-इंस्पेक्टर ने जग्गा के अभिवादन का उत्तर दिए बिना ही कहा, "तू अपनी बंदमाशी कभी छोड़ेगा भी कि नहीं ?"

"हुजूर, आप जो जी चाहे कह लें। पर इस बार मैं बेकसूर हूँ। गुरु की सौगंध खाकर कहता हूँ कि मैं बेकसूर हूँ।"

जग्गा फर्श पर ही बैठा रहा। इंस्पेक्टर दीवार की टेक लेकर खड़ा था।

"डकैतीवाली रात तू कहाँ था ?"

"मेरा डकैती से कोई वास्ता नहीं।" जग्गा ने टाल-मटोल करते हुए कहा।

"कहाँ था तू डकैतीवाली रात ?" सब-इंस्पेक्टर ने फिर पूछा।

जग्गा ने नजर नीची कर ली, "मैं अपने खेतों में गया था। पानी देने की बारी मेरी थी।"

सब-इंस्पेक्टर जानता था कि वह झूठ बोल रहा था।

"पानी की बारी का पता तो नहरवाले को पूछने से चल जाएगा। यह बताओ कि लंबरदार को बोलकर गए थे कि गाँव से बाहर जा रहे हो ?"

जग्गा हकबकाया-सा नजरें नीची किए रहा।

"तुम्हारी माँ कह रही थी कि तुम खेतों से जंगली सूअरों को खदेड़ने गए थे ?"

लाओ और [illegible] लाना। यहीं लें आना। मैं खुद ही भीतर ले जाऊँगा।"

बैरा [illegible] तो [illegible]कुमचंद चाय की [illegible] और शेव के पानी को खुद ही बेडरूम में ले गए [illegible] मेज पर रख दिया। उन्होंने अपना चाय का प्याला बनाया और [illegible] का [illegible] फैलाकर बैठ गए। शेविंग क्रीम से झाग बनाकर दाढ़ी बनाते हु[illegible] चुस्कियाँ लेते रहे। कप- प्लेटों और चम्मचों की [illegible] के बावजूद लड़[illegible] सोई रही। उसका मुँह थोड़ा- सा खुला हुआ था। [illegible] की धड़[illegible] के सिवाय और कोई गति शरीर में नहीं लग रही थी। बाल मुँह पर बिखरे थे। तितली के आकार की गुलाबी रंग की कचकड़े की उसके [illegible] की चिमटी कुर्सी के पाये के साथ झूल रही थी। साड़ी गुची- मुची थी। कुछ सलमे- सितारे फर्श पर भी चमक रहे थे। शेव करते- करते और चाय की चुस्कियाँ लेते हुकुमचंद उसे एकटक [illegible]। वे अपनी भावनाओं का सम्यक् विश्लेषण नहीं कर पा रहे थे। तो क्या वे रात की कसर पूरी करना चाह रहे थे ? लड़की अगर चाहे तो वे उसके साथ सो सकते थे। वे कुछ उद्विग्न [illegible] उठे। पर अब ऐसा कुछ करने के लिए उन्हें जमकर पीना पड़ेगा।

दरवाजे पर किसी के खाँसने की आवाज ने उनके ध्यान को भंग कर दिया.। सब- इंस्पेक्टर ही होगा। हुकुमचंद ने अपनी चाय खत्म की और कपड़े बदलने बाथरूम में चले गए। फिर नौकरों के क्वार्टरों की ओर खुलनेवाले दरवाजे से होकर बरामदे में आए। सब- इंस्पेक्टर अखबार पढ़ रहा था। उन्हें देखते ही उसने कुर्सी से उठकर सैल्यूट मारा, "हुजूर, क्या बारिश में ही सैर कर रहे थे ?"

"नहीं, यों ही नौकरों के क्वार्टरों की तरफ चक्कर काट रहा था। इतनी जल्दी आए हो ? सब कुशल- मंगल तो है ?"

"आजकल तो आदमी जिंदा बचा हो तो समझिए कि सब कुशल- मंगल है। कहीं कोई शांति नहीं रह गई है। एक मुसीबत टलती है तो दूसरी हाजिर !" मजिस्ट्रेट को एकाएक लाशों का ध्यान हो आया, "क्या रात को भी बारिश हो रही थी ? रेलवे स्टेशन के पास क्या हाल है ?"

"अभी जब बारिश शुरू हुई थी तो मैं वहीं था। कुछ खास नहीं बचा है। सिर्फ अस्थियों का ढेर है। चारों तरफ कपाल ही कपाल बिखरे पड़े हैं। उनका क्या करें, समझ नहीं आता। मैंने लंबरदार को कहलवा भेजा है कि पुल और

रेलवे स्टेशन के करीब किसी को भी न जाने दिया जाए।"

"कितने थे ? क्या तुमने गिने थे ?"

"नहीं सर, सिख अफसर बता रहा था कि ह...से तो ज्यादा ही थे। मेरे खयाल से उसने बोगियों की गिनती से अंदाजा लगाया होगा कि एक-एक बोगी में कितने आदमी होंगे। वह कह रहा था कि करीबन पाँच सौ तो छतों, फुटबोर्डों और बफरों पर बैठे मारे गए ह...। गाड़ी की छत पर सूखे हुए खून के धब्बे भी हैं।"

"हरे राम ! हरे राम ! डेढ़ हजार निर्दोष बंदे ! कलजुग और किसे कहेंगे। इस धरती पर कोई काला साया पड़ गया है। यह तो सरहद का एक हिस्सा है, ऐसी वारदातें तो सब कहीं हो रही होंगी। और मुझे लगता है कि हमारे ... यही कर रहे होंगे। इस गाँव में रहनेवाले मुसलमानों के बारे में क्या खबर है ?"

"सर, मैं वही बताने आया था। कुछ गाँवों से मुसलमान लोग शरणार्थी कैंपों मे जाना शुरू हो गए हैं। बलूची और पठान फौजी, जहाँ-जहाँ से खबरें मिल रही हैं, मुसलमानों को पाकिस्तानी लारियों में उठा रहे हैं। पर मनो-माजरा के मुसलमान अभी वहीं हैं। आज सबेरे ही लंबरदार ने बताया कि चालीस-पचास सिख शरणार्थी भोर-तड़के ही कम गहरे पानीवाली जगह से नदी पार करके यहाँ आ गए हैं। सबके सब गुरुद्वारे में डेरा डाले हैं।"

"उनको यहाँ क्यों रुकने दिया गया ?" हुकुमचंद ने पूछा, "तुम तो अच्छी तरह जानते हो, आर्डर है कि पाकिस्तान से आनेवाले रिफ्यूजियों को जालंधर कैंपों में भेजा जाए। यह तो बड़ा गंभीर मामला है। अगर उन लोगों ने मनो-माजरा में मार-काट करनी शुरू कर दी तो ?"

"नहीं, सर, हालात अभी तक तो काबू में हैं। इन रिफ्यूजियों का पाकिस्तान में ज्यादा नुकसान नहीं हुआ है और जाहिर है कि इनके साथ रास्ते में कोई छेड़छाड़ भी नहीं हुई है। मनो-माजरा के मुसलमान इनके लिए गुरुद्वारे में खाना-पीना भी पहुँचा रहे हैं। लेकिन अगर ऐसे शरणार्थी भी यहाँ आते हैं जो कत्लेआमों से गुजरकर आए हैं और जिनके भाई-बंधु मारे गए हैं तब जरूर बात फर्क हो जाती है। लोग नदी पार करके आ जाएँगे, यह तो मैंने सोचा ही नहीं था। आमतौर पर बारिशों के बाद नदी करीब मील-भर चौड़ी हो जाती है और नवंबर-दिसंबर

तक पानी कहीं भी इतना कम नहीं हो पाता कि लोग पाँव- पाँव चलकर इसे पार कर लें। इस साल तो बारिश न के बराबर हुई है। नदी को कई नुक्तों से पार किया जा सकता है, लेकिन मैंने उन सभी जगहों पर सिपाहियों को गश्त लगाने के लिए तैनात कर रखा है।"

हुकुमचंद ने रेस्ट हाउस के लॉन के पार देखा। बारिश लगातार हो रही थी। छोटे- छोटे गड्ढों में पानी भर आया था। सारा आसमान स्लेटी हुआ पड़ा था।

"हाँ, अगर बारिशें यों ही होती रहीं तब तो नदी चढ़ेगी ही और लोग आसानी से नदी पार कर इधर नहीं आ सकेंगे। और पुलों से शरणार्थियों का आना तो रोका ही जा सकता है।"

बिजली की कड़क और बादलों की गर्जन वर्षा के वेग की सूचक थी। हवा बारिश की फुहारों को बरामदे के भीतर तक पहुँचा रही थी।

"लेकिन हमें इस इलाके के मुसलमानों को तो यहाँ से निकालना ही होगा, भले उन्हें अच्छा लगे या बुरा और यह जितनी जल्दी हो सके, उतना ही अच्छा !"

बातचीत में काफी देर तक विराम लगा रहा। दोनों जन बारिश को निहारते रहे। हुकुमचंद ने ही फिर से बोलना शुरू किया; "इस तूफान के सामने झुकते हुए इसे गुजर जाने देना चाहिए। इस पैंपास घास को ही देखो। इसकी पत्तियाँ हवा में झुक जाती हैं, पर इसका पंखदार तना अकड़कर खड़ा रहता है। तूफान आता है तो तिड़ककर इसके सफेद पंख रोंए- रोंए हुए हवा में बिखर जाते हैं।" कुछ रुककर वे पुनः बोले, "अक्लमंद इंसान हवाओं का रुख देखकर ही तैरता है।"

सब- इंस्पेक्टर ने उनकी घिसी- पिटी उक्ति को बड़ी विनम्रता से ध्यान देते हुए सुना, लेकिन हुकुमचंद ने पुलिस अफसर के चेहरे का सपाट भाव पढ़ लिया था कि बात उसके पल्ले नहीं पड़ी थी, सो खुलकर साफ शब्दों में ही इसे बताना होगा।

"रामलाल के कत्ल की बाबत तुमने क्या किया है ? कोई और गिरफ्तारी की है ?"

"जी सर, जग्गा बदमाश ने हमें कल उनके नाम बता दिए थे। ये लोग कभी उसके ही गिरोह में थे। नदी के उतार की तरफ करीब मील- भर दूर

कसूरा गाँव से मल्ली और उसके चार साथियों को गिरफ्तार करने के लिए मैंने कुछ सिपाहियों को भेज दिया है। जग्गा इनके साथ नहीं था, यह बात पक्की है।"

हुकुमचंद को उसकी बातों में खास दिलचस्पी नहीं लग रही थी। लगता था उनका मन कहीं और अटका था।

"हम लोगों को जग्गा और उस दूसरे आदमी पर नाहक ही शक रहा", सब-इंस्पेक्टर कहता गया, "मैंने आपको बताया था न कि जग्गा का एक मुसलमान जुलाहे की बेटी से इश्क का चक्कर है। दरअसल हर रात वह इसी चक्कर में फँसा रहता था। मल्ली ने ही डकैती के बाद जग्गे के आँगन में चूड़ियों का बंडल फेंका था।"

हुकुमचंद का मन अब भी एकाग्र नहीं था।

"सर, अगर आप मानें तो मल्ली और उसके साथियों की गिरफ्तारी के बाद जग्गा और इकबाल को छोड़ दें?"

"मल्ली और उसके साथी कौन हैं? मुसलमान या सिख?" हुकुमचंद अचानक ही पूछ बैठे।

"सारे ही सिख हैं, सर!"

मजिस्ट्रेट फिर सोच में डूब गए। कुछ देर के बाद अपने आप में ही बड़बड़ाने लगे, 'अच्छा होता, अगर वे मुसलमान होते! यह सुनकर और उस मुस्लिम लीगी सोशलिस्ट की बाबत सुनकर, मनो-माजरा के लोग गाँव के मुसलमानों को जाने से नहीं रोकते।'

फिर एक लम्बी चुप्पी।

सब-इंस्पेक्टर ने मन ही मन योजना बना ली थी। बिना कुछ टीका-टिप्पणी किए वह उठ खड़ा हुआ। पर हुकुमचंद भी किसी तरह का खतरा मोल लेना नहीं चाहते थे। "सुनो", वे बोले, "मल्ली और उसके गिरोह को बिना रपट लिखे ही छोड़ दो। पर उनकी गतिविधियों पर नजर रखो। उन्हें हम फिर गिरफ्तार कर लेंगे, जरूरत पड़ी तो! और, उस सोशलिस्ट और उस बदमाश को अभी मत छोड़ो! हो सकता है हमें उनकी जरूरत पड़े।"

सब-इंस्पेक्टर ने सैल्यूट मारा।

"ठहरो, अभी मेरी बात पूरी नहीं हुई है", हुकुमचंद ने हाथ उठाकर

उसे रोका, "यह कार लो तो मुस्लिम रिफ्यूजी कैंप के कमांडर को मेरा संदेश पहुँचा देना कि हमने मनो- माजरा के मुसलमानों को निकाल ले जाने के लिए ट्रक मँगवाए हैं।"

सब- इंस्पेक्टर ने एक बार और सैल्यूट मारा। वह जानता था कि इस नाजुक और उलझे हुए मामले को उस पर छोड़कर हुकुमचंद ने उसे सम्मान का स्थान दिया था। उसने अपनी बरसाती पहन ली।

"मैं तुम्हें इस बारिश में ऐसे जाने को न मजबूर करता, पर मामला ऐसा है कि एक पल की देर करना भी ठीक नहीं" अब भी बाहर देखते हुए हुकुमचंद ने कहा।

"मैं जानता हूँ, सर", सब- इंस्पेक्टर ने फिर सलाम ठोंका, "मैं जाते ही एक्शन लेता हूँ।" अपनी साइकिल पर सवार होकर वह रेस्ट हाउस से निकल कीचड़ भरी सड़क पर बढ़ने लगा।

मूसलाधार पड़ती बारिश को बरामदे में बैठे हुकुमचंद टकटकी लगाए देखते रहे। उन्हें अपने आदेशों के सही- गलत से कोई मतलब नहीं था.। वे मजिस्ट्रेट थे, मिशनरी नहीं। यह तो रोजमर्रा की समस्याएँ थीं, जिनका समाधान उन्हें ढूँढना होता था। उन्हें अपने निर्णयों को औचित्य के किसी तराजू पर तोलने कि जरूरत नहीं थी। वैसे भी उनके जीवन में 'कर्तव्यों' का कोई खास स्थान नहीं था। स्थान था तो सिर्फ वर्तमान का मुकाबला करने का.। उन्होंने जीवन को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया था, मानो जो होता है होने दो। वे न तो इसका रुख बदलना चाहते थे, न ही इसके प्रति कोई विद्रोह था उनके मन में! इतिहास की प्रक्रियाओं में लोगों का योगदान हठात हुआ है, जान- बूझकर नहीं। उनका विश्वास था कि व्यक्ति को जानबूझकर जीवन- धारा से टकराव तभी करना चाहिए जब जान पर बन आई हो या समाज के ढाँचे के बिखरने अथवा परंपराओं के टूटने का खतरा सामने हो। इस समय उनकी मुख्य समस्या थी मुसलमानों की जान की रक्षा करना। वह इसके लिए कोई भी तरीका अपना सकते थे। और फिर अभी तक उन्होंने ऐसा कोई भी उग्र कदम नहीं उठाया था, जिसका विरोध हो। जिन दो व्यक्तियों को उनके द्वारा जारी किए गए वारंटों पर गिरफ्तार किया गया था, उन्हें तो वैसे

भी पकड़ना ही था। एक तो क्रांतिकारी था, दूसरा गुंडा था। अशांति के इन दिनों में वैसे भी उन्हें हिरासत में रखना जरूरी था। इतने बड़े मामले में अगर कोई छोटी- मोटी गलती हो भी जाए तो वे उसको कबूल करने में नहीं डरेंगे। हुकुमचंद को स्वयं पर गर्व हो आया। उनकी योजना ठीक तरह से कार्यान्वित हो जाए, बस ! और अगर उनके निर्देशन में हुई तो सब ठीक ही होगा। उनके अधीनस्थ लोग अक्सर उनके मन की बात अच्छी तरह समझ नहीं पाते हैं और कई बार उन्हें बड़ी जटिल परिस्थिति में ला खड़ा करते हैं।

रेस्ट हाउस के भीतर से बाथरूम का दरवाजा खोलने और बंद करने की आवाज़ें आ रही थीं। हुकुमचंद ने उठकर नाश्ता लाने के लिए बैरे को आवाज लगाई।

लड़की पलँग की पाटी पर हाथों में ठुड्डी टिकाए बैठी थी। उन्हें देख वह सिर पर पल्ला लेती हुई उठकर खड़ी हो गई। हुकुमचंद कुर्सी पर बैठ गए तो वह भी वापस अपनी जगह पर जा बैठी और फर्श की ओर ताकने लगी। दोनों के बीच अटपटी- सी चुप्पी थी। कुछ देर बाद हुकुमचंद ने हिम्मत करके कहा, "तुम्हें भूख लगी होगी। मैंने चाय के लिए कह दिया है।"

लड़की ने अपनी उदास लंबी आँखों से उन्हें देखते हुए कहा, "मुझे घर जाना है।"

"कुछ खा लो तो मैं ड्राइवर से कह दूँगा कि तुम्हें घर छोड़ आए। कहाँ रहती हो तुम ?"

"चंदन नगर, जहाँ इंस्पेक्टर साहिब का थाना है।"

एक लंबा विराम और !

हुकुमचंद ने गला साफ किया, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

"हसीना, हसीना बेगम !"

"हसीना ! तुम सचमुच हसीन हो। तुम्हारी माँ ने बहुत खूब नाम रखा है तुम्हारा। वह बूढ़ी औरत क्या तुम्हारी माँ है ?"

लड़की पहली बार मुस्कराई ! इसके पहले कभी किसी ने उसकी ऐसी तारीफ नहीं की थी और अब सरकार ने खुद उसे खूबसूरत कहा था और उसके घरवालों के बारे में पूछ रहे थे।

"नहीं सरकार, यह तो मेरी नानी है। मेरी माँ तो मेरे पैदा होते ही मर

गई थी।"

"तुम्हारी उम्र क्या होगी ?"

"मालूम नहीं। सोलह- सत्रह की होऊँगी। या फिर अठारह की। मैंने कोई माँ के पेट में ही पढ़ाई थोड़े कर ली थी जो अपना जन्मदिन लिखकर रख लेती !"

अपने बचकाने मजाक पर वह खुद ही मुस्करा दी। हुकुमचंद भी हँस पड़े। बैरा चाय की ट्रे और अंडा- टोस्ट लेकर आया था।

लड़की चाय बनाने के लिए उठी। उसने एक टोस्ट पर मक्खन लगाकर तश्तरी हुकुमचंद के सामनेवाली मेज पर रख दी।

"मैं कुछ नहीं खाऊँगा। मैंने अभी- अभी चाय पी ली है।"

लड़की ने ऐसे दिखाया जैसे वह नाराज हो गई हो।

"अगर आप नहीं खाएँगे तो, जाइए, मैं भी नहीं खाती !" वह नखरे करती हुई बोली और मक्खन लगानेवाली छुरी को प्लेट में रखकर वापस पलँग पर जा बैठी।

मजिस्ट्रेट उसकी अदाओं पर रीझ गए। बोले, "अच्छा चलो, मुझसे नाराज मत होओ।" करीब जाकर उन्होंने उसके कंधों पर हाथ रखा, "तुमको खाना ही पड़ेगा। कल रात भी कुछ नहीं खाया तुमने।"

लड़की उनकी बाँहों में कसमसाई, "आप खाएँगे तभी मैं खाऊँगी। आप नहीं खाएँगे तो मैं भी नहीं खाऊँगी !"

"अच्छा, अच्छा, तुम जिद करती हो तो", हुकुमचंद उसकी कमर में हाथ डालकर उसे अपनी मेज के करीब ले आए, "चलो, हम दोनों ही खाते हैं। आओ, यहाँ बैठो मेरे पास।"

लड़की सहज होने लगी थी। वह उनकी गोद में बैठ गई। उसने मक्खन से लथपथ टोस्ट मजिस्ट्रेट के मुँह में ठूँस दिया। उनके 'बस, बस' कहने पर हँसते हुए वह उनकी मूँछों पर लगा मक्खन पोंछने लगी।

"तुम इस धंधे में कब से हो ?"

"कैसा वाहियात सवाल पूछ रहे हैं आप ? क्यों ? मैं जब से पैदा हुई हूँ, तभी से इसी धंधे में हूँ। मेरी माँ गायिका थी, मेरी नानी भी गायिका थी।"

"मेरा मतलब गाने से नहीं। वह दूसरी बातें …?" हुकुमचंद ने दूसरी

तरफ देखते हुए स्पष्ट किया।

"दूसरी बातों से मतलब ?" लड़की ने अक्खड़ता से पूछा, "हम लोग पैसे के लिए वह दूसरा काम नहीं करती फिरतीं। हम नाचती और गाती हैं। आप शायद नहीं जानते कि नाच और गाना क्या चीज होती है। आप तो सिर्फ दूसरी बातों को ही जानते हैं। व्हिस्की की बोतल और वो दूसरी बातें! बस!"

हुकुमचंद असहज होते हुए खँखारकर बोले, मैंने तो ...पर मैंने तो तुम्हें कुछ नहीं किया ..."

लड़की ने हँसकर मजिस्ट्रेट के चेहरे को अपने हाथ से दबाया, "बेचारे मजिस्ट्रेट साहिब! आपका इरादा तो बुरा ही था, पर आप थके हुए थे। आप तो रेलवे के इंजन की तरह खर्राटे मार रहे थे।" लड़की उनके खर्राटों का स्वाँग करते हुए जोरों से हँसने लगी।

हुकुमचंद ने लड़की के बालों को सहलाया। उनकी बेटी जिंदा होती तो इतनी ही उम्र की होती, यही सोलह- सत्रह की। उनके कान में अपराध- बोध का नहीं, बल्कि एक अजीब- सी उपलब्धि का भाव उभर रहा था। वे इस लड़की के साथ सोना नहीं चाह रहे थे, न ही उसके होंठों को चूमना, उसे प्यार करना या उसके शरीर को सहलाना। वे तो सिर्फ इतना ही चाह रहे थे कि वह उनकी छाती पर अपना सिर रखकर उनकी गोदी में बैठ जाए।

"आप तो फिर खयालों में डूब गए लगते हैं", लड़की ने उनके सिर को उँगलियों से खुजलाते हुए कहा। उसने प्याले में चाय बनाई और प्लेट में उँडेलते हुए बोली, "लीजिए, चाय पी लीजिए। आपका सोचना बंद हो जाएगा।"

"नहीं, नहीं! मैं तो पी चुका हूँ।"

"अच्छा! तो मैं चाय पीती हूँ और आप अपने खयालों को पीजिए।"

लड़की सुड़क- सुड़ककर चाय पीने लगी।

"हसीना!" उसका नाम दोहराते हुए उन्हें अच्छा लग रहा था, "हसीना!"

"हाँ! बस, हसीना, हसीना ही करते रहेंगे कि कुछ कहेंगे भी ?"

हुकुमचंद ने उसके हाथ से खाली तश्तरी लेकर मेज पर रख दी। उन्होंने उसे अपने करीब खींच लिया और उसका सिर अपने सिर से सटाकर उसके बालों में उँगलियाँ फिराने लगे।

"तुम मुसलमान हो ?"

"हाँ, मैं मुसलमान हूँ। हसीना बेगम और क्या होगी ? दढ़ियल सिख होगी क्या ?"

"मैंने सोचा था कि चंदन नगर से सभी मुसलमान जा चुके हैं। तुम कैसे बची हुई हो यहाँ ?"

"बहुत से चले गए हैं। पर इंस्पेक्टर साहिब ने कहा कि उनके कहने तक हम वहाँ रुके रहें। वैसे भी गायक लोग उस मायने में न हिंदू होते हैं न मुसलमान। सभी जातियों के लोग हमारा गाना सुनने आते हैं।"

"तुम्हें छोड़कर और भी मुसलमान हैं चंदन नगर में क्या ?"

"हाँ, क्यों ?" लड़की ने लड़खड़ाती-सी आवाज में बात बदलते हुए कहा, "आप उनको मुसलमान, हिंदू-सिख कुछ भी कह सकते हैं", और फिर शरमाते हुए बोली, "हिजड़ों की एक टोली अब भी वहाँ है !"

हुकुमचंद ने उसकी आँखों पर हाथ रखकर कहा, "बेचारी हसीना ! शरमा गई है। मैं नहीं हँसूँगा। चलो, मान लिया कि तुम हिंदू या मुसलमान नहीं हो, कम-अज-कम उस मायने में तो नहीं जिस मायने में हिजड़े हिंदू या मुसलमान नहीं होते।"

"मुझे मत चिढ़ाइए।"

अपना हाथ हटाते हुए वे बोले, "चलो, नहीं चिढ़ाता।" लड़की अब भी शरमा रही थी। उन्होंने पूछा, "अच्छा यह बताओ कि हिजड़ों को क्यों छोड़ दिया गया ?"

"बताती हूँ, अगर आप वादा करें कि हँसेंगे नहीं।"

"हाँ, वादा रहा !"

लड़की अचानक सजीव-सी हो उठी, "हिंदू मुहल्ले में किसी के घर बच्चा हुआ था। मजहबी दंगों का सोचे बिना हिजड़े उनके घर गाने चले गए। हिंदुओं और सिखों ने, मुझे सिख अच्छे नहीं लगते, उनको पकड़ लिया, क्योंकि वे मुसलमान थे।" वह जान-बूझकर रुकी।

"फिर क्या हुआ ?" हुकुमचंद ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

लड़की हँसने लगी और हिजड़ों की तरह उँगलियाँ फैलाकर तालियाँ बजाती हुई बोली, "ढोलकी बजाकर वे अपनी फटी हुई मर्दानी आवाज में

गाने लगे और इतनी जोर-जोर से घूम-घूमकर नाचने लगे कि उनके साए ऊपर उठ गए। रुककर उन्होंने भीड़ के अगुओं से पूछा, "आप लोगों ने हमें देख लिया है, अब बताओ—हम हिंदू हैं कि मुसलमान ?" सिखों को छोड़कर जितने लोग वहाँ खड़े थे सब हँस-हँसकर लोट-पोट हो गए।"

हुकुमचंद भी हँसने लगे।

"अभी बात खत्म नहीं हुई। सिख अपनी किरपानें लेकर आए और उन्हें धमकाने लगे, 'इस बार छोड़ देते हैं। लेकिन अगर तुम चंदन नगर से न निकले तो हमने तुम्हें मार डालना है।' एक हिजड़े ने फिर तालियाँ बजाते हुए कहा, 'क्यों ? क्या हमारे रहने से तुम लोग हमारे जैसे हो जाओगे ? और तुम्हारे बच्चे पैदा होने बंद हो जाएँगे ?' यह सुनकर तो सिख भी हँसने लगे।"

"यह तो बहुत खूब रहा", हुकुमचंद ने कहा, "पर जब तक यह खलबली है तुम्हें जरा सचेत रहना चाहिए। कुछ दिन तक घर में ही रहो!"

"मैं नहीं डरती। हम बहुत से लोगों को अच्छी तरह जानती हैं और फिर इतना बड़ा ताकतवर मजिस्ट्रेट मेरे साथ है। जब तक वह यहाँ है, कोई मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता।"

हुकुमचंद बिना कुछ बोले लड़की के बालों को सहलाते रहे। लड़की ने शरारत से मुस्कराते हुए उनकी तरफ देखा, "आप मुझे पाकिस्तान भेजना चाहते हैं ?"

हुकुमचंद ने उसे और करीब सटा लिया। उनकी भावनाओं में एक ज्वार-सा आया। 'हसीना !' शब्द उनकी जुबान पर नहीं आ रहे थे, "हसीना ..."

"हसीना, हसीना, हसीना ! मैं कोई बहरी नहीं हूँ। आप कुछ कहते क्यों नहीं ?"

"तुम आज यहाँ रुकोगी न ? अभी तो नहीं चली जाओगी न ?"

"बस, यही कहना था आपको ? अगर आप अपनी कार नहीं भेजेंगे तो मैं इस बारिश में पाँच मील कैसे जाऊँगी ! पर अगर आप मुझसे गवाएँगे और एक रात और रोकेंगे तो आपको नोटों का एक बड़ा बंडल और देना होगा।"

हुकुमचंद ने राहत की साँस ली।

"पैसा क्या चीज है !" मखौल के अंदाज में बहादुरी दिखाते हुए वे बोले, "मैं तो तुम्हारे लिए जान भी कुर्बान कर सकता हूँ !"

हफ्ते- भर तक इकबाल अपनी कोठरी में अकेला ही था। अखबारों और पत्रिकाओं के ढेर उसके इकलौते साथी थे। उसकी कोठरी में बिजली की कोई व्यवस्था न थी, न ही कोई लैंप वगैरह उसे दिया गया था। जबरदस्त गर्मी में, बगल की कोठरी से खर्राटों और बाहर से बीच- बीच में गोली चलने की आवाजों को सुनता वह लेटा रहता। बारिशें शुरू होने के बाद से तो थाना और भी मनहूस लगने लगा था। लगातार पड़ती पानी की बूँदों को निहारने के सिवा देखने को और कुछ भी नहीं था। या फिर कभी- कभी कोई सिपाही बैरकों और रिपोर्टिंग रूम के बीच आता- जाता दिख जाता। बूँदों की पटपटाहट और बिजली की कड़क के सिवाय सुनने को भी क्या था? बगलवाली कोठरी से जग्गा भी कभी- कदा ही दिखता। पहली दो शामों को तो सिपाही जग्गा को कहीं ले जाते रहे और एक घंटा बाद वापस ले आते। इकबाल को नहीं पता था कि वे उसके साथ क्या करते थे ? उसने कभी पूछा नहीं और जग्गा ने कुछ बताया नहीं। लेकिन पुलिसवालों के साथ जग्गा की हाजिर- जवाबियाँ दिन- ब- दिन बेतकल्लुफ और अश्लील होती जा रही थीं।

एक सुबह पाँच आदमियों को हथकड़ी पहनाकर पुलिस थाने लाया गया। उनको देखते ही जग्गा अपना आपा खो बैठा और उन्हें गालियाँ बकने लगा। इस पर आपत्ति करते हुए वे पाँचों रिपोर्टिंग रूम में ही जमकर खड़े हो गए और वहाँ से हिलने का नाम ही न लें। इकबाल हैरान था कि वे कैदी आखिर कौन थे ? बातचीत का जो भी हिस्सा वह सुन पाया, उससे यही अंदाजा लग रहा था कि बाहर लोग लूट- मार पर निकले हुए थे। यहाँ तक कि थाने से कुछ गज की ही दूरी पर चंदन नगर में भी हत्याएँ हो रही थीं। आग की गुलाबी लौ इकबाल ने भी देखी और लोगों के चीत्कार भी सुने थे। पर पुलिस ने किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया था। इसलिए यह कैदी निश्चय ही कोई खास किस्म के होंगे। वह सोच ही रहा था कि इतने में उसके कमरे का ताला

खुला और एक संतरी के साथ जग्गा भीतर घुसा। जग्गा का मिजाज अच्छा लग रहा था।

"सत श्री अकाल बाबू जी," उसने कहा, "मैं आपके चरणों की सेवा करने आ पहुँचा हूँ। आपसे कुछ सीखने का भी मौका मिलेगा।"

"इकबाल साहिब", कोठरी को पुनः बंद करते हुए सिपाही ने जोड़ा, "सीधे रास्ते पर लाने के लिए इस बदमाश को कुछ सीख दीजिए।"

"चलता बन", जग्गा ने कहा, "बाबू जी तो यह सोचते हैं कि तुम लोगों ने और सरकार ने मुझे बदमाश बनाया है। क्यों बाबू जी ?"

इकबाल ने जवाब नहीं दिया। उसने दूसरी कुर्सी पर अपने पाँव टिका लिए और अखबारों के ढेर को देखने लगा। जग्गा ने इक़बाल के पैर कुर्सी से नीचे किए और अपने भारी-भरकम हाथों से उन्हें दबाने लगा।

"बाबू जी, आखिरकार मेरी किस्मत खुल ही गई। अगर आप मुझे थोड़ी अंग्रेजी सिखा दें तो मैं आपकी चाकरी करूँगा। कुछेक वाक्य ही ताकि में भी थोड़ी गिट-पिट कर सकूँ।"

"दूसरी कोठरी में कौन आ रहा है ?"

"मुझे क्या पता !" जग्गा ने तनिक हिचकिचाते हुए कहा, "कह रहे हैं कि रामलाल के कातिलों को पकड़कर लाए हैं।"

"मैं तो सोच रहा था कि उसके कत्ल के लिए तुम्हें पकड़ा गया था।"

"मैं भी तो यही सोच रहा था", सोने के कील मढ़े सफेद दाँत चमकाते हुए जग्गा मुस्कराया, "मनो-माजरा में कुछ भी होता है तो मुझे पकड़ लिया जाता है। आप जानते ही हैं—मैं बदमाश हूँ न !"

"तो तुमने रामलाल को नहीं मारा ?"

जग्गा ने पैर दबाना बंद किया। अपने हाथों से कानों को छू जीभ बाहर निकाली, "तोबा-तौबा, अपने ही गाँव के बनिए को मारूँगा ? बाबू जी, कौन उस मुर्गी को मारता है जो अंडे देती हो। जब मेरा बाप जेल में था, रामलाल ही वकीलों को देने के लिए मुझे पैसे देता रहा था। मैं हरामियोंवाला काम नहीं करता।"

"तब तो वे अब तुम्हें छोड़ देंगे !".

पुलिस इस मुल्क की राजा है। वो जब चाहेंगे मुझे छोड़ेंगे ! अगर वे

मुझे यहाँ रखना चाहेंगे तो कोई न कोई केस मेरे खिलाफ गढ़ ही लेंगे कि लंबरदार [illegible] बिना बताए गाँव से बाहर गया था या कोई भी और इल्जाम !"

"तुम तो उस रात गाँव से बाहर गए ही हुए थे। क्यों ?"

[illegible] सिंह कूल्हों के बल बैठ गया [illegible] इकबाल के पैरों को गोद में रखकर [illegible]।

"मैं गाँव से बा[illegible] था", आँखों में शरारत भरकर वह बोला, "पर मैं किसी का कत्ल नहीं कर रहा था। कत्ल तो खुद मेरा हो रहा था।"

उसके हाव-भाव से इकबाल समझ गया था कि वह क्या कहने जा रहा था। वह जग्गा को आगे बोलने की शह देना नहीं चाहता था। एक बार जग्गा का मुँह खुल ही गया था तो अब उसे रोकना मुश्किल था। वह और जोर-जोर से इकबाल के पैर दबाने लगा।

"आप यूरोप में बहुत सालों तक रहे हैं ?" आवाज धीमी करते हुए उसने पूछा।

"हाँ, बहुत सालों तक।" इकबाल ने उसको टालने की गरज से जवाब दिया।

"तब तो बाबू जी", और भी धीरे से जग्गा ने पूछा, "आप तो बहुत सी मेम साहिबों के साथ सोए होंगे ? नहीं ?"

इकबाल को चिढ़ आने लगी। हिंदुस्तानियों को सेक्स के विषय पर बात करने से ज्यादा देर तक नहीं रोका जा सकता। इनका मनो-मस्तिष्क हमेशा इससे त्रस्त रहता है। शहरों में हस्तमैथुन के दुष्प्रभावों से मुक्त होने और कामोत्तेजना बढ़ाने की दवाओं के इश्तहारों के बड़े-बड़े पोस्टर सड़कों पर लगे दिख जाएँगे। अदालतें भी इससे अछूती नहीं। बाजारों में फुटपाथों पर बैठे ऐसे फेरीवाले भी दिख जाएँगे, जिनका लिंग का आकार बढ़ाने की दवाइयों का धंधा बड़ी तेजी से फल-फूल रहा होता है। इसके दर्शन नीम हकीमों के विज्ञापनों में भी हो जाते हैं जो बाँझपन को दूर करने और बेटा पैदा करने के शर्तिया इलाज का दावा करते हैं। आप इसके मुतल्लिक हर वक्त सुन सकते हैं। हिंदुस्तानियों से ज्यादा बेझिझक माँ-बहन की गालियाँ और कौन निकाल सकता है। साला और ससुरा जैसी शब्दावली का प्रयोग दोस्तों और दुश्मनों के लिए समान रूप से किया जाता है। राजनीति, दर्शन,

खेलकूद—बातचीत किसी भी विषय पर हो रही हो, घूम-फिरकर सेक्स पर ही आ पहुँचती है, जिसे सभी चटखारे ले-लेकर ही-ही करते और सुनते-सुनाते हैं।

"हाँ, सोया हूँ", इकबाल ने जग्गा की बात का सरसरी तौर पर जवाब दिया, "कइयों के साथ।"

"वाह, वाह", जग्गा और अधिक उत्साह से इकबाल के पैर दबाने लगा, "वाह बाबू जी ...यह तो बड़ी भारी बात है। आपने तो बड़ा लुत्फ़ उठाया होगा ? मेम साहिबें तो जन्नत की हूरों जैसी होती हैं—गोरी, चिट्टी, चिकनी—रेशम की तरह ! हमें तो यहाँ कालियाँ ही नसीब होती हैं !"

"औरतों में कोई फ़र्क नहीं होता। बल्कि सच कहें तो गोरी औरतों में कुछ नहीं रखा। तुम शादी-शुदा हो क्या ?"

"नहीं, बाबू जी ! एक बदमाश को कौन अपनी बेटी देगा ? मुझे तो जब मौका मिलता है अपना जोगाड़ कर लेता हूँ।"

"तो क्या तुम अकेले ?"

"कभी-कभी ...जब मुकदमे की सुनवाई के लिए फिरोजपुर जाना होता है तो वकीलों और बाबुओं से कुछ बच जाता है तो जरा मौज-मस्ती हो जाती है। सारी रात के लिए तय कर लेता हूँ ! औरतें सोचती हैं कि दो बार या हद से हद तीन बार ...जग्गा ने अपनी मूँछों को मरोड़ी दी, "दूसरे मर्द भी शायद यही सोचते हों ! पर जब जगत सिंह उनको छोड़ता है तो वे अपने कान पकड़कर 'हाय-तौबा' करने लगती हैं और रब्ब का वास्ता देकर जाने को कहती हैं, भले ही अपना दिया पैसा भी लौटा लूँ !"

इकबाल जानता था कि जग्गा बक रहा था। जवानी में लोग ऐसी ही डींगें हाँकते हैं।

"जब शादी हो जाएगी न तुम्हारी, तब तुम्हें अपनी टक्कर का मिल जाएगा," इकबाल ने कहा, "आने दो अपनी जनानी को, फिर कान पकड़ने और तौबा-तौबा करने की बारी तुम्हारी होगी !"

"शादी में कुछ नहीं रखा, बाबू जी ! मौज-मस्ती के लिए न वक्त मिलता है, न ठिकाना ! गर्मियों में सब लोग छतों पर सोते हैं। बस थोड़ी देर के लिए ही कहीं खिसका जा सकता है। सर्दियों में औरतें अलग सोती

[illegible] पदा [illegible] मापे हुसन जवानी
[illegible] जलिस यारॉं ···
[illegible] दगी को नहीं समझते !”
[illegible] की बात का समर्थन किया, “हाँ, इमामबख्श
च [illegible]
[illegible] ढे। [illegible] क [illegible] में आँसू लिए वहाँ से चल दिए।
शादी- शुदा [illegible] काम [illegible]
[illegible] साथ एक [illegible]
[illegible] जगा और [illegible] जी [illegible] चक्कर लगाने से पहले इमामबख्श
[illegible] जेल में पड़ा [illegible] आगे [illegible] से ही कहता [illegible] में पहुँचा। नूराँ तो सो भी गई
बाहर न होता [illegible] आले [illegible] का सौभाग्य कहाँ बत्ती जल रही थी।
मुझे आम से [illegible] नूरू”, उसने नूरा [illegible] को [illegible] हिलाकर जगाया, “उठ, नूरू !”
थोड़ी [illegible] ने पलकें खोलीं, “क्या बात है अब्बू ?”
[illegible] और सामान बाँधना शुरू कर ! हमें कल सबेरे ही जाना है।”
[illegible] सैनिक नाटकीय ढंग से बताया।

“जाना है ? कहाँ ?”

“मुझे नहीं पता।···शायद पाकिस्तान !”

लड़की झटके के साथ उठकर बैठ गई, “मैं पाकिस्तान नहीं जाऊँगी !”

इमामबख्श ने ऐसे जताया जैसे सुना ही न हो, “सारे कपड़े ट्रंक में डाल ले और बर्तन- भाँडे बोरे में ! भैंस के लिए भी कुछ ले लेना। हम भैंस को भी ले चलेंगे !”

“मैं पाकिस्तान नहीं जाऊँगी।” लड़की ने उसकी बातों की परवाह किए बगैर उद्दंडता से कहा।

“तुम तो जाना नहीं चाहतीं न ! पर वे तुम्हें निकाल बाहर कर रहे हैं। समझी ! सारे मुसलमान कैंपों में जा रहे हैं।”

“कौन निकालेगा हमें ? यह हमारा गाँव है। सरकार और पुलिस क्या मर गई है ?”

“बेवकूफी की बातें ना कर, लड़की ! जैसा कहा जा रहा है, वैसा कर ! सैकड़ों- हजारों लोग पाकिस्तान जा रहे हैं उतने ही वहाँ से यहाँ आ रहे हैं। जो वहीं पड़े हैं, वे मारे जा रहे हैं। जल्दी उठ और सामान बाँधना

शुरू कर ! मुझे औरों के घर भी खबर [illegible] है कि वे भी तैयारी शुरू करें ।"

इमामबख्श नूराँ को बिस्तर में वैसे [illegible] । नूराँ आँखें मलती दीवार को घूरने लगी । उ[illegible] बैठे [illegible] था कि क्या करे ? सोच रही थी कि क्यों [illegible] थे [illegible] और रात-भर कहीं बाहर ही रहे । ज[illegible] जा चुकें तो वापस लौट आए । प[illegible] ?" [illegible] या जा सकता था । फिर बाहर बारिश [illegible] रा था । मल्ली को रिहा कर दि[illegible] पर [illegible] ता है, [illegible] भर लौट आया हो । वह मन ही [illegible] यह सं[illegible] फिर भी एक क्षीण-सी आशा उ[illegible] में बसी हुई थी [illegible] सहारे वह उठकर खड़ी हो गई ।

नूराँ बारिश में ही निकल पड़ी । रास्ते में उसने कई लोगों को [illegible] कंधों पर बोरे उठाए हुए देखा । रात के इस पहर भी सारा गाँव जाग[illegible] था । कई घरों में दीया-बत्तियों की हल्की लौ दीख रही थी । कोई दोस्तों-यारों से मिलने आए हुए थे । औरतें जमीन पर बैठी एक-दूसरे से गले मिलती रोए जा रही थीं । उदासी का ऐसा आलम था कि लगता था जैसे हर घर में कोई मौत हुई हो ।

नूराँ ने जग्गा के घर का दरवाजा खड़काया ! भीतर लटकी कुंडी हिली, पर अंदर से किसी का जवाब नहीं आया । धुँधली रोशनी में उसने पाया कि दरवाजा तो बाहर से बंद था । लोहे की कुंडी खोलकर वह भीतर चली गई । जग्गा की माँ बाहर गई हुई थी, शायद अपने मुसलमान पड़ोसियों को मिलने गई हो । घर में न दीया जल रहा था, न बाती । नूराँ खटिया पर बैठ गई । वह जग्गा की माँ का अकेले सामना नहीं करना चाहती थी, न ही घर लौट जाने को उसका मन मान रहा था । सोच रही थी कि काश, कुछ ऐसा हो जाता और जग्गा धीरे से कहीं से भीतर आ घुसता । बैठी-बैठी वह सोचती रही और राह तकती रही ।

नूराँ घंटे-भर तक वहीं बैठी एक-दूसरे के पीछे भागते बादलों की धुँधली आकृतियों को निहारती रही । हल्की फुहारें कभी तेज होतीं तो फिर धीमी

और पुनः तेज। तभी [illegible] कीचड़ भरी गली से किसी के पैरों की आवाज सुनाई दी। किसी [illegible] ज हिलाया।

[illegible] द बूढ़ी माँ की आवाज थी।

नू [illegible] की [illegible] ने लगा। उससे हिला भी न जा रहा था।

[illegible] ने पूछा, "बोलते क्यों नहीं ?"

[illegible] धीरे से बुदबुदाई, "बेबे !"

[illegible] साथ एक [illegible] ज़े की साँकल चढ़ाने लगी।

[illegible] हौले से पूछा, "तुझे उन्होंने छोड़ दिया [illegible]

[illegible] से ही कहता हूँ [illegible]

[illegible] बेबे, मैं [illegible] का सौभाग्य कहाँ [illegible] श की बेटी !"

[illegible] ? तू इस वक्त [illegible] करने आई है ?" बेबे ने गुस्से में [illegible] पूछा।

"जग्गा लौट आया है क्या ?"

"तुझे जग्गा से क्या मतलब ?" वृद्धा ने कड़ककर कहा, "तेरे कारण वह जेल गया। तूने ही उसे बदमाश बनाया है। तेरे बाप को पता है कि तू रंडियों की तरह आधी रात को अनजान लोगों के घर जाती है।"

नूराँ रोने लगी, "हम लोग कल जा रहे हैं ! पाकिस्तान !"

बूढ़ी औरत का दिल तनिक भी नहीं पिघला; "तुम्हारा हमारे से क्या रिश्ता है जो मिलने चली आई है ? हमारी तरफ से तू जहाँ जाती है जा !"

नूराँ ने अपनी आखिरी चाल चली, "मैं नहीं जा सकती। जग्गा ने मुझसे शादी का वादा किया था।"

"निकल जा, कुतिया", वृद्धा गुर्राई, "तू मुसलमान जुलाहे की बेटी सिख किसान से ब्याह करेगी ? निकल जा ! नहीं तो मैं जाके तेरे बाप को और सारे गाँव को बुलाकर लाती हूँ ? जा पाकिस्तान ! मेरे जग्गे को छोड़ !"

नूराँ उदास और सुस्त- सी हो गई, "अच्छा बेबे ! जाती हूँ। मेरे से गुस्से ना हो। जब जग्गा आए तो कहना मैं 'सत श्री अकाल' कहने आई थी।" लड़की वृद्धा के पाँवों में झुककर सुबकने लगी, "बेबे, मैं जा रही हूँ और मैंने फिर लौटकर नहीं आना। जाते वक्त तो मेरे साथ ऐसी निठुर ना बन !"

जग्गा की माँ वैसे ही तनी खड़ी रही। बि[illegible]शब्द-सी। पर मन के भीतर कहीं कुछ पिघला था, "कह दूँगी ज[illegible]

नूराँ का रोना थम गया। बीच-बीच में [illegible]ती। अब भी वह बेबे के पैरों को थामे झुकी थी। [illegible]के पैरों पर ही टिक गया।

"बेबे !"

"अब और क्या कहना चाहती [illegible]?" [illegible]चला था कि वह क्या कहनेवाली थी। [illegible]

"बेबे !"

"बेबे, बेबे, कुछ फूटती क्यों [illegible] को धक[illegible] करते हुए बेबे ने पूछा, "बोल क्या है [illegible]

लड़की ने मुँह का थूक घोंटा—

"बेबे, मेरे पेट में जग्गा का बच्चा है। अगर मैं पाकिस्तान गई और लोगों को पता चला कि इसका बाप कोई सिख है तो वे जरूर इसे मार डालेंगे।"

नूराँ का सिर फिर बेबे के पैरों पर आ गिरा। अबकी बार उसने नूराँ को धकेलकर परे नहीं किया। नूराँ उसके पैरों को और भी कसकर पकड़े हुए फूट-फूटकर रोने लगी।

"कितने महीने का है ?"

"अभी ही पता चला है। दो महीने होंगे।"

जग्गा की माँ ने उठाकर नूराँ को अपने पास चारपाई पर बैठा लिया। नूराँ ने रोना बंद कर दिया।

"मैं तुझे यहाँ नहीं रख सकती !" आखिरकार बेबे के मुँह से निकला, "पुलिस के साथ आगे ही हमारा झंझट चल रहा है। जब सब ठीक-ठाक हो जाएगा और जग्गा लौट आएगा तो तू जहाँ भी होगी, वह तुझे ले आएगा। तेरे बाप को पता है क्या ?"

"नहीं, अगर जो उसे पता चला तो मुझे मार ही सुट्टेगा या फिर किसी के साथ ब्याह डालेगा।" वह पुनः रोने लगी।

"अच्छा, बस कर यह रोना-धोना", बेबे ने कड़ाई से आदेश दिया, "ऐसी खुराफात करते वक्त नहीं सोचा था ? मैं तुझे पहले ही कह चुकी हूँ

कि जग्गा जैसे ही जेल से निकलेगा, तुझे ले आएगा ।"

नूराँ ने सुबकि[illegible]याते हुए कहा, "बेबे, उसको ज्यादा देर ना करने देना [illegible]"

"जल्दी तो [illegible] ही गरज को करेगा । तुझे नहीं लाएगा तो [illegible]दकर लानी [illegible] अपने लिए जनानी ! और यहाँ तो घर में [illegible]टी कौड़ी तक [illegible] काम [illegible] चाहिए होगी तो तुझे लेने आएगा ही । जा, [illegible] की कोई बात [illegible]"

[illegible] धुँधली-सी [illegible] में जगी । उसे लगा, जैसे यह घर उसी [illegible] हो और [illegible] सबकुछ उसका अपना ही हो, यह चारपाई जिस पर [illegible] से बँधी भैंस, जग्गा की बेबे, सब उसके अपने थे, वह कभी-भी [illegible] वापस लौट सकती थी, खुद अपने आप भी, भले जग्गा उसे लेने आए या न आए । वह लोगों से कह सकती थी कि वह शादी-शुदा है । पर अपने अब्बा का ख्याल आते ही जैसे उसकी उजली आशाओं पर घने बादल छाने लगे । वह अब्बा को बिना बताए ही यहाँ वापस लौट आएगी !

"बेबे, अगर मौका मिला तो कल सबेरे मैं 'सत श्री अकाल' कहने आऊँगी । अच्छा अब मैं चलती हूँ । सामान बाँधना है ।" नूराँ ने वृद्धा को कसकर गले लगाया और हाँफते हुए 'सत श्री अकाल' कहकर चली गई ।

जग्गा की माँ देर गए तक चारपाई पर बैठी तारों को घूरती रही ।

उस रात मनो-माजरा में शायद ही कोई सोया हो । लोग बातें करते, रोते और दोस्ती की कसमें खाते एक दूसरे को तसल्ली दे रहे थे कि सबकुछ जल्दी ही ठीक-ठाक हो जाएगा ।

नूराँ के लौटने के पहले ही इमामबख्श मुसलमानों के घरों के चक्कर लगाकर लौट आया था । नूराँ ने अभी तक कुछ भी बाँधा-बूँधा नहीं था । पर उसका मन इतना दुखी था कि उसे गुस्सा भी नहीं आ रहा था । पाकिस्तान जाने का ख्याल जितना दुखदायी बड़ी उम्रवालों के लिए था, उतना ही जवानों के लिए भी होगा । अपनी सखी-सहेलियों से विदा लेने गई होगी बेचारी । इमामबख्श व्यर्थ ही इधर-उधर टिन, बोरे और बक्सों

की खोज करने लगा। कुछ देर बाद नूराँ लौट आई।

"सारी सहेलियों को मिल आई ? चल, अब सामान बाँध ले। सोने के पहले सारी तैयारी कर रखनी है।" इमामबख्श [illegible]

"तुम सो जाओ। सामान मैं बाँध लूँगी। [illegible] करना नहीं है। फिर तुम थके भी तो हुए हो।" नूराँ ने जवाब [illegible] बैठे [illegible]

"हाँ, थका हुआ तो हूँ", चारपाई [illegible] वह बोला, "तू कपड़े-कुपड़े बाँध रख। बर्तन सबेरे रख [illegible] रास्ते में खाने के लिए भी तो कुछ बनाना होगा सबेरे।" लेटते [illegible] को नींद आ गई।

नूराँ को ज्यादा कुछ करने को न [illegible] तेहर पंजाबी के पास होगा भी क्या—दो-चार कपड़ों, एक [illegible] पर [illegible] ए, खाना पकाने के कुछ बर्तनों और पीतल की थालियों [illegible] के सिवा। सब-कुछ एक इकलौती चारपाई में समेटा जा सकता था। नूराँ ने अपने और अब्बू के कपड़ों को एक पुराने-से सलेटी रंग के संदूक में भर लिया। उसे याद था कि यह ट्रंक उनके पास तब से था जब से उसने होश सँभाला था।

चूल्हा धरकर उसने दूसरे दिन के लिए कुछ रोटियाँ सेंकीं। बर्तनों को धोकर उन्हें बोरे में भर लिया। बिस्कुटों और सिगरेट के पुराने डिब्बों में बचे हुए मसाले और नमक वगैरह भर-भरकर उसने लकड़ी के ढक्कनवाले मिट्टी के तेल के खाली पीपे में समेट लिए। सामान बाँधा जा चुका था। बस अब रजाई में तकियों को लपेटकर गोल करना बाकी था। कुछ इधर-उधर की चीजें भी उठाकर चारपाई पर डालनी थीं। कल सबेरे ही सब हो जाएगा। फिर चारपाई को उठाकर बस भैंस पर रख देना था। टूटे हुए आइने के टुकड़े को तो वह हाथ में ही ले जा सकती थी।

पानी सारी रात रुक-थमकर बरसता रहा, पर सबेरे तड़के तो जैसे बारिश की झड़ी ही लग गई। बारिश की एकरस पटपटाहट और सुबह की ताजी हवा की मदहोशी ने रात-भर के जगे थके-हारे गाँववालों को नींद की गोद में सुला दिया।

कीचड़-मिट्टी में धीरे-धीरे रेंगती जीप के हॉर्न और ट्रकों के इंजनों की घरघराहटों ने सारे गाँव की नींद तोड़ दी। काफिला मनो-माजरा में घूम-घूमकर

ऐसी सड़क की तलाश करता रहा जिसमें से होकर ट्रक भीतर जा पाते। काफिले में सबसे आगे च... में दो अफसर थे—एक मुसलमान और दूसरा सिख, जो भुतहा गाड़ी के ... बाद यहाँ आया था। जीप में लाउड- स्पीकर लगे हुए थे और इसके पीछे ... र्जन- भर ट्रक थे। एक ट्रक पूरा का पूरा पठान फौजियों ... भरा हुआ था। ... थे। सबके हाथों में स्टेनगनें थीं।

काफिला गाँव ... बाहर आकर रुक गया। सिर्फ जीप ही भीतर जा सकी। जीप गाँव के बीचोंबीच पहुँची और पीपल के पेड़वाले चबूतरे के पास आकर रुकी। ... ने ... को कहा कि जाकर लंबरदार को बुला लाए। मुसलमान ... से ही कहा। उसके पीछे- पीछे पठान फौजी भी आ पहुँचे। मुसलमान अफसर ने ... सैनिकों को तीन- तीन के गुटों में बाँटकर सारे मुसलमान घरों से लोगों को बुला लाने को भेजा। कुछ मिनटों तक मनो- माजरा में एक ही पुकार की प्रतिध्वनि आती रही, "पाकिस्तान जानेवाले सारे मुसलमान तुरंत यहाँ आ जाएँ आओ! सभी मुसलमान लोग। एकदम अभी!"

धीरे- धीरे पशुओं और बैलगाड़ियों पर अपनी चारपाइयों में लपेटे हुए बिस्तरे, टिन के बक्से, मिट्टी के तेल के पीपे और पीतल के बर्तन आदि डाले, मुसलमानों ने अपने- अपने घरों से निकलना शुरू किया। मनो- माजरा के बाकी लोग भी घरों से बाहर निकल आए, उनको बिदा करने।

दोनों अफसर और लंबरदार सबसे बाद में गाँव से बाहर आए। जीप उनके पीछे- पीछे आ रही थी। वे हाथ हिला- हिलाकर बड़ी जिंदादिली से बतिया रहे थे। ज्यादातर तो मुस्लिम अफसर और लंबरदार में ही बातें हो रही थीं—

"मेरे पास इनका यह सारा सामान—यह बैलगाड़ियाँ, बिस्तरे और बर्तन भाँडे ले जाने के वास्ते कोई बंदोबस्त नहीं है। यह काफिला सड़क के रास्ते पाकिस्तान नहीं जा रहा है। हम लोग इन्हें चंदन नगर रिफ्यूजी कैंप में ले जा रहे हैं। वहाँ से सबको ट्रेन से लाहौर ले जाया जाएगा। ये लोग सिर्फ अपने कपड़े, बिस्तरे, नगदी और गहने ही साथ ले जा सकते हैं। बाकी का सारा कुछ इन्हें यहीं छोड़ जाने को कह दो। इनके सामान की देखभाल का जिम्मा आप ले सकते हैं।"

मनो-माजरा के मुसलमानों को पाकिस्तान ले जाए जाने की खबर सुनकर तो लोग जैसे आसमान से ही गिरे । लंबरदा[illegible] तक [illegible] सोच रहा था कि शायद यह सब अफवाह ही थी और [illegible] लोगों को कुछ दिनों के लिए रिफ्यूजी कैंपों में रखा जाएगा और फिर हा[illegible]बैठे [illegible]रते ही ये वापस आ जाएँगे ।

"नहीं साहिब, हम लोग कुछ नहीं क[illegible] सक[illegible]" लंबरदार ने कहा, "अगर यह एक-दो दिन की बात होती तो [illegible]नके सामान की [illegible]भाल कर भी लेते । आप तो कह रहे हैं [illegible] ले जाएँगे । तब तो इनके लौटने में महीनों भी लग सकते [illegible] पर [illegible]कयत भी बुरी चीज होती है । लोगों का मन बदलते क्या [illegible] है । नहीं, हम तो किसी चीज को भी हाथ नहीं लगाएँगे । हम तो सिर्फ इनके घरों का खयाल कर लेंगे ।"

मुसलमान अफसर भड़क उठा, "मेरे पास बहस करने का वक्त नहीं है । तुम खुद ही देख रहे हो कि मेरे पास सिर्फ बारह ट्रक हैं । इनमें भैंसें और बैलगाड़ियाँ नहीं लादी जा सकतीं ।"

"नहीं, साहिब," लंबरदार अपनी जिद पर अड़ा रहा, "आप जो मर्जी कहो, और हमारे ऊपर गुस्सा भी कर लो, पर हम अपने भाई-बंधों की जायदाद को नहीं छुएँगे । आप हमारे बीच फूट डालना चाहते हो ?"

"वाह, वाह, लंबरदार साहिब !" मुसलमान अफसर ने ठट्ठा मारकर हँसते हुए कहा, "शाबाश, कल तो तुम इनको मारने पर उतारू थे और आज भाई बना रहे हो ! कल फिर कहीं तुम्हारा मन न बदल जाए !"

"ऐसे ताना मत मारो, कैप्टन साहिब, हम भाई हैं और हमेशा भाई रहेंगे ।"

"अच्छा तो ठीक है, लंबरदार, तुम लोग भाई हो न !" अफसर ने कहा, "मैं मान लेता हूँ । फिर भी मैं ये सारा सामान नहीं ले जा सकता । तुम जाओ, जाकर अपने सरदार अफसर और गाँववालों से इसके बारे में बात कर लो । मैं मुसलमानों के साथ बात करता हूँ ।"

मुसलमान अफसर जीप पर चढ़ गया और भीड़ को संबोधित करने लगा । वह एक-एक शब्द तौल-तौलकर बोल रहा था—

"हमारे पास सिर्फ दर्जन भर ट्रक हैं । और तुम सब लोग जो पाकिस्तान

चल रहे हो, दस मिनटों के अंदर ऊपर चढ़ जाओ। हमें और गाँवों को भी खाली [illegible] है। तु[illegible]ग सिर्फ उतना सामान लेकर जा सकते हो जितना तुम उठा सको, फाल[illegible] नहीं। अपनी गाय-भैंसें, बैलगाड़ियाँ, चारपाइयाँ, [illegible]याँ, घड़े औ[illegible]ी का लटरम-पटरम तुम लोग गाँव के अपने [illegible]त-यारों के पा[illegible] सकते हो। अगर मौका मिला तो तुम्हारा ये सामान हम फिर कभी लिवा लाएँगे। तुम लोगों को मैं यह सबकुछ निबटाने के लिए सिर्फ दस मिनट दे सकता [illegible]द काफिला चल पड़ेगा।"

मुसलमानों ने बैलगा[illegible]रकर जीप को घेर लिया और जोर-जोर से प्रतिवाद करने लगे। [illegible]सर जीप से नीचे उतर आया और उसने माइक्रोफोन के पास जाकर [illegible] घोषणा की—

"खामोश, मैं तुम लोगों को होशियार करता हूँ कि दस मिनट के अंदर-अंदर ट्रक यहाँ से चल पड़ेंगे, भले तुम लोग इनमें बैठो या नहीं, इससे मुझे कोई मतलब नहीं।"

पास खड़े सिख किसान सुनते ही सिख अफसर से सलाह करने पहुँचे। अफसर ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अपनी बरसाती के उठे हुए कालर से झाँकता वह भीड़ जमाए लोगों को, उनके पशुओं, बैलगाड़ियों को और बारिश-कीचड़ में धुआँ उड़ाते ट्रकों को उपेक्षा भरी नजरों से घूरता रहा।

"क्यों सरदार साहिब !" मीत सिंह ने अधीरता से पूछा, "लंबरदार ने क्या गलत कहा ? दूसरे की माल-मिल्कियत छूना क्या अच्छी बात है ? गलतफहमी का खतरा तो पैदा हो ही जाता है न ?"

अफसर ने मीत सिंह को ऊपर से नीचे तक घूरा, "आप बिल्कुल ठीक कहते हो, भाई जी ! गलतफहमी का खतरा तो होता ही है। कभी किसी दूसरे की माल-मिल्कियत पर, दूसरे की जनानी पर नजर नहीं डालनी चाहिए। मतलब कि दूसरे की मिल्कियत किसी और को उड़ाकर ले जाने देना चाहिए और अपनी बहनों के साथ ही सोना चाहिए। क्यों ? तुम जैसे लोगों को समझाने का तो बस एक ही तरीका है और वह यह कि तुम्हें पाकिस्तान भेज दिया जाए, जहाँ तुम अपनी आँखों से अपनी माँओं और बहनों की इज्जत लुटती देखो और जब तुम्हें नंगा करके तुम्हारे चूतड़ पर लात मार के वे थूकें तो ..."

अफसर के भाषण ने वहाँ खड़े सभी किसानों के मुँह पर तमाचे जड़

दिए थे। पर उनमें से कोई एक निर्लज्जता से हँसा। सभी ने मुड़कर पीछे देखा। मल्ली और उसके पाँच साथी थे। उन्हीं दे[illegible] गुरुद्वारे [illegible] ठहरे हुए कुछ शरणार्थी भी वहाँ खड़े थे। उनमें से कोई भ[illegible] मनो-माजरा का रहनेवाला नहीं था।

"सरकार", मल्ली ने मुस्कराते हुए कहा, "इस [illegible] के लोग अपनी दरियादिली के लिए मशहूर हैं। अपना तो ख्याल कर नहीं सकते, दूसरों के घरों का क्या करेंगे? पर आप फ़िकर ना करें, स[illegible]र साहिब, हम मुसलमानों की जायदाद का ख्याल कर लेंगे। आ[illegible]र से कह दो कि हमारे पास सारा कुछ छोड़ जाएँ। हम इस सब [illegible] पर [illegible]ल्कुल खैरियत से रखेंगे बशर्ते कि ये लोग बाद में लूट के न [illegible]। आप इस बात के लिए अपने कुछ सिपाही यहाँ तैनात कर दें, ताकि ये लोग कुछ गड़बड़ी न कर सकें।"

लोगों में खलबली मच गई। लोग चिल्लाते हुए इधर से उधर दौड़ने लगे। मुसलमान अफसर की अंतिम चेतावनी के बावजूद गाँववाले अब भी अपनी-अपनी सलाहें देते जा रहे थे। अपने घबराए हुए स्वधर्मियों से घिरा मुसलमान अफसर अपने सिख सहकर्मी के पास पहुँचा, "इनके बचे हुए सामान की जिम्मेदारी किसी को सौंपने का इंतजाम तुम कर सकते हो?"

सिख अफ़सर के जवाब से पहले ही चारों तरफ से आपत्तियों की झड़ी लग गई। अफसर कन्नी काटता चुपचाप खड़ा रहा।

मुसलमान अफसर तेजी से मुड़ा और चीखते हुए बोला—

"खामोश!"

बुड़बुड़ाहट एकदम ही थम गई।

हर शब्द पर जोर देते हुए उसने कहा, "मैं तुम लोगों को सिर्फ पाँच मिनट का वक्त देता हूँ। जितना सामान उठा सको, बस उतना ही लेकर चुपचाप ट्रकों में जा बैठो।"

"सबकुछ तय हो गया है", सिख अफसर ने अपने सहकर्मी से नर्मी के साथ पंजाबी में कहा, "मैंने इंतजाम कर लिया है। बगलवाले गाँव के ये लोग पशुओं, बैलगाड़ियों और इनके घरों की तब तक देखभाल करते रहेंगे

जब तक हालात बदस्तूर नहीं हो जाते। मैं इनकी चीजों की लिस्ट बनाकर तुमको भिजवा दूँगा।"

मुसलमान अफसर ने जवाब नहीं दिया। उसके चेहरे पर एक कटु मुँस्कान उभरी। मनो[illegible]जरा के सिखों और मुसलमानों ने लाचार नजरों से [illegible]- दूसरे की ओर [illegible]खा।

कुछ करने- कराने का वक्त ही कहाँ था। यहाँ तक कि एक- दूसरे को अलविदा कहने का भी उन्हें मौका नहीं मिला। ट्रकों के इंजन चालू कर दिए गए थे। पठान कैदियों ने [illegible] जी उनकी बैलगाड़ियों के पास जमा किया और फिर उन्हें ट्रकों में ठूँसा ही। [illegible] चारों तरफ कीचड़ ही कीचड़ और ऊपर से पड़ती बारिश। बंदूकों के [illegible] पर गड़ा- गड़ाकर फौजी लोगों को इकट्ठा करने में लगे थे। ऐसी भगदड़ मची थी कि ट्रकों पर चढ़ने के बाद ही लोग चीख- चीखकर छूटे हुए लोगों से विदा ले सके। मुसलमान अफसर ने अपनी जीप से काफिले का एक चक्कर काटकर देखा कि सब ठीक- ठाक है, तो फिर अपने सिख प्रतिपक्षी से विदा लेना आया। दोनों ने भावहीन चेहरों से बिना मुस्कराए एक- दूसरे से हाथ मिलाया। जीप ट्रकों की कतार के आगे हो ली। कूच की उद्घोषणा करते हुए माइक्रोफोन ने फिर गरजना शुरू कर दिया.। अफसर ने चिल्लाकर नारा लगाया, "पाकिस्तान !" उसके सिपाहियों ने समवेत स्वर में हुंकारा, "जिंदाबाद !" काफिला कीचड़- मिट्टी में रास्ता बनाता आगे बढ़ने लगा। आँखों से ओझल होने तक वहाँ खड़े सिख उन्हें देखते रहे। अपनी आँखों से आँसू पोंछते भरे दिल से धीरे- धीरे वे अपने- अपने घरों को लौटने लगे।

मनो- माजरा के दुखों का प्याला अभी पूरी तरह नहीं भरा था। सिख अफसर ने लंबरदार को बुलवा भेजा। गाँववाले भी साथ हो लिए क्योंकि कोई भी कहीं अकेला छूट जाना नहीं चाहता था। सिख फौजी चारों ओर से उन्हें घेरकर खड़े हो गए। अफसर ने गाँववालों को बताया कि उसने मल्ली को निकाले गए मुसलमानों की संपत्ति का वाली- वारिस बना दिया है अगर कोई भी उसके या उसके सिपाहियों के किसी भी काम में दखल देने की कोशिश करेगा तो उसको गोली मार दी जाएगी।

तब मल्ली के साथियों तथा पाकिस्तान से आए शरणार्थियों ने बैलगाड़ियों

से बैलों को खोल लिया, उनमें रखे सामान को लूटा और गाय- भैंसों को खोल हाँकते हुए गाँव से बाहर ले चले ।

सारी सुबह लोग अपने- अपने घरों के भीतर बैठे खुले दरवाजे के बाहर ताकते रहे । उन्होंने मल्ली और उसके साथियों तथा पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को मुसलमानों के घरों को लूटते देखा । बीच- बीच में गश्त लगाते सिख फौजियों को भी वे देख रहे थे । अपने घरों में बैठे- बैठे वे पीट- पीटकर खींचते हुए ले जाई जा रही गाय- भ[illegible]विदारक रंभाना सुनते रहे । पालतू मुर्गे- मुर्गियों के चाकुओं की धार पर [illegible] होते कुकडू- कूँ भी उन्होंने सुने । किंतु वे कुछ भी नहीं कर सके, सिवाय आहें भरने और वैसे ही चुपचाप पड़े रहने के ।

भैंसें चरानेवाला एक लड़का कुकुरमुत्ते तोड़ने नदी की तरफ गया तो उसने लौटकर खबर दी कि नदी काफी ऊपर चढ़ आई है । किसी ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया । वे तो अब यही मनौती मना रहे थे कि नदी में बाढ़ आ जाए और बेशक उनके बीवी- बच्चों और ढोर- डांगरों समेत सारे मनो- माजरा को बहा ले जाए, बशर्ते कि इसमें मल्ली और उसके गिरोह के लोग, पाकिस्तान से आए शरणार्थी तथा गश्त लगाते ये फौजी भी डूब मरें ।

इधर लोग कराह- कराहकर आहें भर रहे थे, उधर मूसलाधार बारिश से नदी चढ़ती जा रही थी । सर्दियों के दिनों में नदी का पानी पुल के बीच काले खंभों के बीच ही सिमटा रहता था, पर अब बाकी के स्तंभों से भी होता हुआ चौड़ी नदी का रूप धारण किए हुए पुल को पार करता बाँध को भी छूने लगा था । नदी की तलहटी के छोटे- छोटे टापुओं पर उगी झाड़ियों के सिवा सभी कुछ जलमग्न हुआ दिख रहा था । पनकौओं और कुररियो (जलपक्षी) के झुंड भी वहाँ से अपने बसेरे छोड़ नदी तट पर और फिर वहाँ से भी उड़, सुनसान पड़े पुल पर जा बसे थे । इधर कई दिनों से पुल पर से कोई भी गाड़ी नहीं गुजरी थी ।

दोपहर के वक्त एक और आदमी भी घर- घर चिल्लाता फिरता दिखाई दिया, "ओए बंता सिंह, नदी चढ़ रही है । ओए दलीप सिंहा, नदी चढ़ आई है ! ओए सुनो ! पानी बाँध तक आ पहुँचा है ।"

लोगों की मायूस आँखें ऐसे उठीं जैसे कह रहे हों, 'हम यह पहले भी सुन चुके हैं।'

थोड़ी देर बाद एक और आदमी ने वही खबर सुनाई, "नदी का पानी तेजी से चढ़ रहा है।" फिर तीसरे ने, फिर चौथे ने भी। सभी ने एक-दूसरे को बताना शुरू किया, "जानते हो, नदी में बाढ़ आनेवाली है।"

आखिरकार लंबरदार खुद अपनी आँखों से देखने के लिए नदी पर पहुँचा। ठीक ही था। नदी काफी चढ़ी हुई थी। यह सिर्फ दो दिनों की बारिश की करामात नहीं हो सकती थी। बर्फ के पिघलने से पहाड़ों पर खूब बारिश हुई होगी। पानी के फैलने के डर से शायद नहरों के जलकपाट बंद कर दिए गए हों, इसीलिए नदी के पानी को बहने का रास्ता नहीं मिल रहा होगा। वह चिर-परिचित पतली-सी मटमैली धारा फैलकर बहुत भयावह नदी बनी खतरे का संकेत देने लगी थी। केवल पुल के स्तंभ ही नदी की आक्रमकता की अवज्ञा करते अपनी जगह पर जमकर खड़े थे। पानी की चादर से लौंग की शक्ल में ऊपर उठते स्तंभों के नुकीले कोनों से पड़ती पानी की बूँदें उस तरल विस्तार पर मानो फुंसियाँ ही फुंसियाँ उठा रही हों। सचमुच, सतलज की भयावहता देखते ही बनती थी।

शाम होते-होते मनो-माजरा के लोगों को मुसलमानों के जाने और मल्ली के गिरोह के काले-कारनामे जैसे बिसर से गए थे। वार्तालाप का मुख्य विषय अब नदी पर सिमट आया था। एक बार फिर औरतें अपने घरों की छतों पर खड़ी होकर पच्छिम की ओर देखने लगी थीं। मर्द स्थिति का जायजा लेने के लिए एक-एक करके पुल पर जाने-आने लगे थे।

शाम ढलने के पहले लंबरदार एक बार फिर नदी को देखने गया। दोपहर के मुकाबले नदी काफी चढ़ आई थी। थोड़ी देर पहले पानी से ऊपर उठे पैंपास घास के गुच्छे अब काफी कुछ पानी में डूब चुके थे। उनकी डंडियाँ ढीली पड़कर फूल गई थीं और एक झक सफेद पिच्छ बिखरकर पानी पर तैर रहे थे। इतने कम समय में नदी का ऐसा चढ़ाव लंबरदार ने अपनी जिंदगी में पहली बार देखा था। फिर भी इस बाढ़ के मनो-माजरा तक पहुँचने में अभी बहुत देर थी। मिट्टी का बाँध अपनी जगह काफी मजबूत और सुरक्षित लग रहा था। एहतियात के तौर पर उसने रात भर नदी की पहरेदारी करने का बंदोबस्त करवा दिया था। तीन-तीन आदमियों की चार टोलियाँ बनाकर उन्हें बारी-बारी

से चौकसी रखने को तैनात कर दिया गया। उनको ताकीद की गई है कि वे सुबह से लेकर शाम तक पुश्ते पर बंने रहें और घंटे-घंटे पर आकर लंबरदार को रपट देते रहें। बाकियों को अपने-अपने घरों के भीतर ही रहने की ताकीद की गई थी।

लंबरदार के निर्णय की छत्रछाया में सारा गाँव बेधड़क होकर सोया पड़ा था। पर लंबरदार की पलकों में नींद नहीं थी। आधी रात के ठीक बाद पहरेदारी करनेवाले आदमी बड़े आवेश में जोर-जोर से बातें करते गाँव को लौटे। चाँद की धुँधली रोशनी में वे यह तो नहीं जान पाए कि उस समय तक नदी का पानी कितना चढ़ आया था, लेकिन वे घबराए हुए थे, क्योंकि उन्होंने मदद को पुकारती लोगों की कुछ अजीब-सी आवाजें नदी की तरफ से आती सुनी थीं। आवाजें या तो नदी के ऊपर से आ रही थीं या परली तरफ से। लंबरदार अपनी टॉर्च लेकर उनके साथ चल पड़ा।

चारों जन पुश्ते पर खड़े होकर सतलज का पर्यवेक्षण करने लगे। नदी पानी की काली चादर-सी लग रही थी। लंबरदार ने टॉर्च की रोशनी नदी की सतह पर फेंकी। भँवर खाते पानी के सिवा उन्हें कुछ दिखाई नहीं दिया। उन्होंने साँस रोककर सुनने की कोशिश की पर पानी की गिरती बूँदों के शब्द के अतिरिक्त और कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा था। लंबरदार बार-बार उन तीनों आदमियों से यही पूछता रहा कि क्या उन्हें पूरा विश्वास था कि उन्होंने इनसानों की आवाजें सुनी थीं! कहीं सियारों, वगैरह की तो नहीं?

वे भी शायद अपने कानों सुनी आवाजों के बारे में भ्रम में पड़ गए थे। उन्होंने आपस में ही पूछना शुरू कर दिया, "सुना तो साफ-साफ था, क्यों करनैला?"

"हाँ, साफ-साफ ही तो सुना था—'हाय-हाय', जैसे कोई दर्द से कराह रहा हो।"

चारों एक पेड़ के नीचे लालटेन के इर्द-गिर्द बैठ गए। बरसातियों की तरह पहने उनके बोरे पानी से भीगकर बुरी तरह चू रहे थे। उनके सारे कपड़े भी भीगे हुए थे। करीब घंटा-भर बाद बादल कुछ छँटे और बारिश का वेग कम होकर बूँदा-बाँदी में बदल गया। थोड़ी देर बाद पानी बरसना बिल्कुल थम गया। पश्चिम के क्षितिज से बादलों को चीर चाँद भी उभरने

लगा था। चाँद के प्रतिबिंब ने नदी के पानी पर परले किनारे से लेकर पेड़ के नीचे बैठे आदमियों तक्र मानो पिघली चाँदी की एक चौड़ी पर्त ही पसार दी हो। चाँदनी के इस चमकते हुए पथ पर पानी पर पड़ती सिलवटें तक साफ- साफ दृष्टिगोचर हो रही थीं।

उन्होंने देखा कि एक काली- सी गोलाकार चीज पुल के स्तंभ से टकराकर नदी की धार के साथ मनो- माजरा की तरफ पुल के पुश्ते की ओर बढ़ी चली आ रही थी। लग रहा था जैसे एक बड़ा सा ड्रम हो, जिसके कोनों से डंडियाँ- सी निकली हुई हों। आगे- पीछे और इधर- उधर लुढ़कते हुए पानी के बहाव के साथ यह चाँदनी के उस पथ पर आ पहुँचा, जिसके निकट लंबरदार और वे तीन आदमी बैठे हुए थे। उन्होंने नजदीक से देखा कि यह तो एक मरी हुई गाय थी जिसका पेट पानी भर जाने से किसी बड़े- से ड्रम की तरह फूल आया था और अकड़ी हुई टाँगें ऊपर उठ गई थीं।

उसके बाद पुआल के कुछ गट्ठर बहते हुए आए, फिर कपड़ों की कुछ पोटलियाँ !

लंबरदार ने कहा, "लगता है जैसे कोई गाँव बाढ़ में बह गया हो।"

"चुप, ध्यान से सुनो !" एक आदमी ने फुसफुसाते हुए कहा। किसी के कराहने की दबी- दबी सी आवाज पानी के पार से उभरी।

"सुना तुमने ?"

"चुप !"

अपनी साँसें रोके उन्होंने सुनने की कोशिश की।

नहीं, यह इनसानों की आवाजें नहीं थीं। यह तो कोई गड़गड़ाहट- सी थी। हाँ, गड़गड़ाहट ही थी। यह तो रेलगाड़ी की गड़गड़ाहट थी। उसके इंजन की फूत्कार स्पष्ट होने लगी थी। अब तो इंजन की बहिरेखा भी दिखाई पड़ने लगी थी, पर इंजन में कोई बत्ती नहीं जल रही थी, हैडलाईट भी नहीं। इंजन की चिमनी से फुलझड़ियों की तरह चिन्गारियाँ उड़ रही थीं। रेल के पुल पर पहुँचने तक पनकौए उड़कर पुनः नदी पर जा बैठे और कुररियाँ जोर- जोर से चिंचियाती हुई ऊपर आकाश में उड़ चलीं। ट्रेन मनो- माजरा के स्टेशन पर जाकर रुक गई। दिशा से ही स्पष्ट था कि पाकिस्तान से आई है।

"अरे, गाड़ी में कोई बत्ती नहीं जल रही !"

"इंजन ने सीटी भी नहीं बजाई !"

"बड़ी भुतहा- सी लग रही है गाड़ी ।"

"परमात्मा के वास्ते ऐसी बातें न करो" लंबरदार ने कहा, "शायद मालगाड़ी होगी । तुमने जो आवाज सुनी थी, वह इसी के इंजन की होगी गाड़ियों के ये नए अमरीकी इंजन ऐसे चीखते हैं जैसे किसी को हलाल किया जा रहा हो ।"

"नहीं, लंबरदारा ! हमने तो वह आवाज घंटे- भर पहले सुनी थी और फिर दोबारा वही आवाजें गाड़ी के आने के पहले सुनीं ।"

एक आदमी बीच में टोककर बोला, "अब तो नहीं सुनाई दे रहीं । ट्रेन खड़ी जो है, अब उसमें से क्या आवाज आएगी ?"

रेलवे लाइन के उस पार से, जहाँ अभी कुछ दिन पहले ही हजार से भी अधिक लाशों को जलाया गया था, किसी सियार के जोर- जोर से हुआने की आवाज आई । थोड़ी देर में सियारों का झुंड का झुंड ही हुआने लगा । चारों आदमी भय से काँप उठे ।

"वे भी सियारों की ही आवाजें होंगी । हुआते हैं तो ऐसे लगता है जैसे कोई औरत किसी की लाश पर बैठी सियापा कर रही हो !"

"नहीं, नहीं" दूसरे आदमी ने प्रतिवाद किया, "हरगिज नहीं, वह तो इनसानों की ही आवाजें थीं, बिल्कुल साफ- साफ । आदमी की ही आवाजें !"

वे वहीं बैठे रहे । उन्होंने पानी पर ऐसी अजीबो- गरीब चीजें बहती देखीं जो उनकी पहचान में भी नहीं आ रही थीं । चाँद अचानक लुप्त होने लगा था । थोड़ी देर अँधेरा रहा, फिर पूर्व के क्षितिज से धुँधला- सा प्रकाश छिटकना शुरू हुआ । चमगादड़ों की लंबी पंक्तियाँ निःशब्द उड़ती हुई उधर से निकल गईं । कौओं ने काँव- काँव करना शुरू कर दिया । पेड़ों के झुरमुट से कोयल की कर्णभेदी कुहुक भी सुनाई पड़ी । लोग नींद से जाग उठे थे ।

बादल धीरे- धीरे उत्तर की तरफ उड़ चले थे और सूरज निकल आया था । पानी से भीगी धरती पर संतरी रंग की छटा फैल गई । नदी का चढ़ाव जारी था ।

लंबरदार और उसके साथियों ने देखा कि नदी के गँदले पानी में

तैरती बैलगाड़ियों के साथ उनसे जुते बैलों के फूले हुए पंजर अभी तक जुड़े हुए थे। घोड़ों के कंकालों की पीठें एक-दूसरे से ऐसे रगड़ खा रही थीं जैसे वे आपस में एक-दूसरे को खुजला रहे हों। आदमी-औरतों के शव भी तैरते हुए आ रहे थे। पेट फूल जाने के कारण उनके कपड़े बदन से चिपके थे। नन्हे-नन्हे बच्चे मानो पानी को हथेलियों से पकड़े पेट के बल सोए पड़े हों। आकाश चीलों और गिद्धों से भर गया। उड़-उड़कर वे तैरते हुए कंकालों पर बैठने लगे। शवों को नोच-नोचकर वे तब तक खाते रहे जब तक कि वे शव उलटकर अपने आप सीधे नहीं हो जाते और हवा में तने उनके हाथ डरा-डराकर उन गिद्धों-चीलों को भगा नहीं देते।

"लगता है, रात कोई गाँव बाढ़ की चपेट में आ गया!" लंबरदार ने संजीदगी से कहा।

"रात में कौन बैलों को जोतकर रखता होगा?" साथियों में से एक बोला।

"हाँ यह बात है। किसने जोता होगा बैलों को ···?"

पुल की मेहराबों से और भी बहुत-सी लाशें बहकर आती दिखाई दीं, इंसानों की लाशें; खंभों से टकराकर वे कुछ देर को रुकतीं, फिर भँवर में चक्कर काटती हुई नदी के उतार की तरफ बह आतीं।

किनारे की तरफ आती लाशों को अच्छी तरह देखने के लिए वे पुल की तरफ बढ़े। वहाँ खड़े होकर उन्होंने गौर से देखा।

"लंबरदारा, ये डूबे नहीं हैं, इनका कत्ल किया गया है!"

सफेद दाढ़ीवाला एक बूढ़ा किसान पानी पर सीधे मुँह तैर रहा था। उसकी बाँहें ऐसे फैली थीं जैसे क्रूस पर चढ़ाया गया हो। मुँह पूरा का पूरा खुला था, मुँह में एक भी दाँत नहीं था। आँखें धुँधलाई-धुँधलाई-सी। चेहरे के चारों ओर बिखरे बालों का प्रभामंडल बन आया था। उसके गले से छाती तक जाता एक गहरा घाव दिखाई दे रहा था। बूढ़े की काँख में एक छोटे बच्चे का सिर फँसा हुआ था। सिर में पीछे छेद बना हुआ था।

मैदानों में पहुँचाने के लिए पहाड़ी नदियों में गिराए लकड़ी के लट्ठों की तरह नदी में अनगिनत शव बहते चले आ रहे थे। पुल के बीचोंबीच के

मेहराब से होकर आती लाशें तेजी से आगे बढ़ी जा रही थीं। जो पुल के खंभों से टकराती उलट-पुलट रही थीं, उनके घावों को साफ-साफ देखा जा सकता था। किसी के हाथ-पैर कटे थे, तो किसी के पेट चिरे हुए थे। औरतों के शवों के स्तन कटे हुए थे। धूप में चमकती नदी में वे डूबते-उतराते बहे चले जा रहे थे और उनके ऊपर मँडराती हुई उड़ रही थीं अनगिनत चीलें और गिद्ध।

लंबरदार और बाकी तीनों ने अपनी पगड़ियों के लटकते सिरों से अपने मुँह ढँक लिए। "गुरु हमारी रक्षा करें!" उनमें से कोई बुदबुदाया, "कहीं मार-काट हुई है। हमें तुरंत पुलिस को खबर करनी चाहिए।"

"पुलिस?" नाटे-से आदमी ने तिक्तता से कहा, "वे क्या करेंगे? एफ.आई.आर. लिखेंगे इस वारदात की?"

भरे दिल से वे चारों मनो-माजरा को लौट पड़े। लौटते हुए वे सोच रहे थे कि लोगों को क्या बताएँगे! नदी का पानी और ऊँचा चढ़ आया है? या, किसी गाँव में बाढ़ आ गई है? या बता दें कि उस पार मारकाट हुई लगती है और सतलुज पर सैकड़ों लाशें तैर रही हैं? या फिर चुपचाप मुँह को सिए ही बैठे रहें?

जब वे गाँव लौटे तो उनकी बातें सुनने के लिए वहाँ कोई नहीं खड़ा था। वे सब तो स्टेशन की तरफ देखते हुए अपनी-अपनी छतों पर खड़े थे। कई दिनों के बाद मनो-माजरा में दिन के वक्त कोई रेलगाड़ी आकर रुकी थी। इंजन का मुँह पूरब की तरफ था, तो इसलिए कोई शक नहीं था कि पाकिस्तान से ही आई थी। इस बार भी स्टेशन सेना और पुलिस के सिपाहियों से भरा था और स्टेशन की घेराबंदी कर दी गई थी।

घरों की छतों से ही चीख-चीखकर लोग एक-दूसरे को नदी पर तैरते मुर्दों की खबर भी दे रहे थे। वे आपस में औरतों और बच्चों की कटी-फटी लाशों के बारे में बतियाने लगे। कोई भी यह ज़ानने का इच्छुक नहीं था कि मरनेवाले कौन थे। न ही कोई नदी तक जाकर उन्हें देखने का इच्छुक था। स्टेशनवाली घटना के प्रति लोगों की उत्सुकता अधिक थी, क्योंकि यहाँ से और ज्यादा डरावनी खबरें मिलने की संभावना थी।

गाड़ी में क्या आया होगा, इस बारे में किसी के भी मन में कोई शंका

नहीं थी। उन्हें पक्का विश्वास था कि सिपाही तेल और लकड़ी की माँग करने आएँगे। उनके पास अब देने के लिए तेल तो था ही नहीं, जो थोड़ी- बहुत लकड़ी बची थी वह भी बारिश से इतनी सील गई थी कि जलाने लायक रही ही नहीं थी।

लेकिन सिपाही उनके पास नहीं आए। उसके बदले वहीं पर एक बुलडोजर मँगाया गया। स्टेशन के बाहर, मनो- माजरा की तरफ की जमीन को बुलडोजर ने अपने निचले दाँतों से खोदना शुरू किया। घंटों मिट्टी खोदते रहने के बाद लगभग पचास गज लंबी एक खाई खोदकर तैयार कर दी गई। दोनों तरफ मिट्टी के ऊँचे- ऊँचे ढेर लग गए। फिर कुछ देर के लिए काम बंद रहा। बुलडोजर के काम की निगरानी करते सुस्ती से इधर- उधर खड़े सिपाहियों को प्लेटफार्म पर पहुँचने का आदेश मिला। वे दो पंक्तियों में कैन्वास के स्ट्रेचर उठाए चले जा रहे थे। स्ट्रेचर में पड़ी लाशों को गड्ढे में उलटाकर वे पुनः और लाशें लाने स्टेशन चले जाते। यह क्रम शाम तक चलता रहा। बुलडोजर जैसे फिर जगा। उसके दाँत फिर खुले। उठा- उठाकर परे की गई मिट्टी को वापस डालते हुए उसने खाई को पाटना शुरू कर दिया। पटी हुई खाई भरे हुए घाव के दाग की भाँति लग रही थी। इस सामूहिक कब्र को सियारों और बिज्जुओं से बचाने के लिए दो सिपाहियों को इसकी निगरानी करने को यहीं छोड़ दिया गया।

उस शाम सारा गाँव अरदास के लिए गुरुद्वारे में उमड़ आया था। गुरुपर्व अथवा बैसाखी वाले दिन को छोड़ ऐसा कभी नहीं हुआ था। गुरुद्वारे में नित्य- प्रति आनेवालों में तो केवल औरतें और वृद्धजन ही होते थे। बाकी लोग तो बच्चों के नामकरण, अमृतं चखना, शादी- ब्याह या क्रिया- कर्म आदि के अवसरों पर ही गुरुद्वारे आते थे। लाला के कत्ल के बाद से गुरुद्वारे में आनेवालों की संख्या धीरे- धीरे बढ़ने लगी थी। लोग अपने घरों में अकेले पड़ने से डरने लगे थे। मुसलमानों के जाने के बाद से तो और भी अधिक। उनके वीरान घरों के भड़भड़ाते हुए खिड़कियाँ- दरवाजे भुतहा और भयोत्पादक लगने लगे थे। ग्रामवासी उधर से निकलते तो उनकी ओर बिना देखे ही तेजी से गुजर जाते। आसरे की एक यही जगह अब उनके पास बची थी जहाँ वे

बिना किसी विशेष स्पष्टीकरण के आ-जा सकते थे। मर्द इसलिए जाते कि वहाँ उनकी जरूरत पड़ सकती थी, औरतें इसलिए कि वे अपने मर्दों के साथ-साथ रह सकें और बच्चे तो उनके साथ जाते ही। बाबाजी (गुरु ग्रंथ साहिब) वाला मुख्य कक्ष और उसके अगल-बगल के दोनों कमरे शरणार्थियों और गाँव के लोगों से खचाखच भरे रहते थे। चौखट के दूसरी तरफ उनकी चप्पलें, जूते पंक्तियों में करीने से सजे रखे रहते।

मीत सिंह ने लालटेन के प्रकाश में सांध्यकालीन गुरुवाणी का पाठ पढ़ा। उसके पीछे खड़ा एक आदमी चँवर डोला रहा था। पाठ समाप्त हुआ तो संगत ने सबद गाने शुरू कर दिए और मीत सिंह ने शनील के चमकीले रूमाला साहिब में गुरु ग्रंथ साहिब को रखकर रात के विश्राम के लिए संतोख (सुला)दिया। संगत उठकर हाथ जोड़ खड़ी हो गई। मीत सिंह ने सबके सामनेवाला अपना स्थान ग्रहण किया। उसने दसों पादशाहों, सिख शहीदों और सिखों के तीर्थस्थलों के नामों का जाप किया और फिर उनके आशीर्वादों का आह्वान किया। हर अर्ज के बाद संगत ऊँची आवाज में 'वाहे गुरु' कहकर अपनी आमीन कहती। फिर सबने घुटनों के बल झुककर अपना माथा टेका और इसी के साथ अनुष्ठान समाप्त हुआ।

मीत सिंह आकर लोगों के बीच बैठ गया। यह एक गंभीर किस्म की बैठक थी। सिर्फ बच्चे ही बेधड़क होकर खेल रहे थे, हँसते-खिलखिलाते और कमरे में एक-दूसरे के पीछे दौड़ते हुए। बड़ों ने उनको शरारतें करने से टोका, तो वे उदास होकर एक-एक कर अपनी-अपनी माँओं की गोदियों में आकर सो गए। मर्द-औरतें भी अलग-अलग कोनों में पसरकर सोने लगे।

सुबह की घटनाएँ सोकर भुलाई जानेवाली नहीं थीं। कइयों को तो नींद आई ही नहीं। जिनको किसी तरह आई भी वे भी ऐसे तनाव में सोए कि पासवाले व्यक्ति का हाथ या पाँव लगते ही घबराकर चीखें मारते उठ बैठते। घोड़े बेचकर सोनेवालों को भी सपनों में दिन के दृश्य पुनर्जीवित होकर दिखने लगे थे। सोते-सोते भी उन्हें मोटरगाड़ियों की आवाजें, गाय-भैंसों का रंभाना और लोगों का करुण चीत्कार सुनाई देता रहा। नींद में ही उन्हें सुबकियाँ आती रहीं और उनकी दाढ़ियाँ आँसुओं से भीगती रहीं।

कुछ अधजगे लोगों ने जब सचमुच ही बाहर किसी मोटरगाड़ी के हॉर्न

की आवाज एक बार और सुनी, तो भी उन्होंने यही सोचा कि शायद वे सपना ही देख रहे थे। जो सचमुच सपने देख रहे थे, उन्होंने सोचा कि यह हॉर्न भी सपनेवाला ही होगा। सपनों में ही जैसे उन्होंने यह भी सुना कि कोई उनसे पूछ रहा है, 'क्या तुम सब मर चुके हो ?' और उन्होंने 'हाँ-हाँ' में हामी भरी !

आधी रात को आनेवाला यह वाहन एक जीप थी, वैसी ही जिसमें सबेरे फौजी अफसर आए थे। यह जीप गाँव के रास्तों से पूर्व परिचित लग रही थी। जीप दरवाजे-दरवाजे होती हुई पूछ रही थी, 'घर में कोई है क्या ?' जवाब में सिर्फ कुत्ते ही भौंकते रहे।

सब जगह घूम घामकर जीप गुरुद्वारे में पहुँची और ड्राइवर ने इंजन बंद कर दिया। दो आदमी उतरकर अहाते में आए और चिल्ला-चिल्लाकर पूछने लगे—"कोई है क्या ? कि सब के सब मर गए हो ?"

लोग हड़बड़ाकर उठ बैठे। कुछ बच्चे घबराकर रोने लगे। मीत सिंह ने लालटेन की बत्ती तेज की। वह और लंबरदार दोनों उठकर आगंतुकों से मिलने बाहर आए।

आगंतुकों ने देखा कि उनके आने से उपस्थित जन-समूह में खलबली-सी मच गई थी। लंबरदार और मीत सिंह को दरकिनार कर वे दोनों मुख्य कक्ष की चौखट पर पहुँचे। उनमें से एक ने घबराए हुए लोगों को संबोधित करते हुए पूछा—

"क्या तुम सब मर चुके हो ?"

"तुममें से कोई जिंदा भी है ?" दूसरे ने साथ देते हुए पूछा।

लंबरदार ने गुस्से में भरकर जवाब दिया, "इस गाँव में कोई नहीं मरा है। तुम्हें क्या चाहिए ? बोलो !"

आगंतुकों के जवाब देने से पहले ही उनके दो और आदमी आकर खड़े हो गए। सब के सब सिख थे। सबने खाकी वर्दियाँ पहन रखी थीं और कंधे से बंदूकें लटकाई हुई थीं।

अपने साथियों को जोर-जोर से संबोधित करते हुए एक आगंतुक ने कहा, "यह गाँव तो निरा मुर्दा लग रहा है !"

"इस गाँव पर गुरु की मेहरबानी है। यहाँ कोई नहीं मरा है।" मीत

सिंह ने निःशब्द गरिमा के साथ कहा।

"ठीक है। अगर मरा नहीं है तो मर जाओगे। इस गाँव को तो चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए। यहाँ के लोग नामर्द हैं!" आगंतुक ने हाथ हिला-हिलाकर बड़ी उग्रता से कहा।

उन्होंने अपने जूते खोलकर गुरुद्वारे के मुख्य कक्ष में प्रवेश किया। लंबरदार और मीत सिंह भी उनके पीछे-पीछे भीतर चले आए। अजनबियों को देखकर मर्दों ने अपनी पगड़ियाँ पहननी शुरू कीं। औरतों ने अपने-अपने बच्चों को गोद में डाल लिया और उन्हें हिला-हिलाकर सुलाने लगीं।

आनेवालों में से अगुआ से लग रहे युवक ने लोगों को बैठ जाने का संकेत किया। सभी लोग बैठ गए। नवयुवक का हाव-भाव बड़ा आक्रामक लग रहा था। बीस-बाईस साल का लगता था। छोटी-छोटी दाढ़ी को ब्रिलियंटाइन से ठुड्ढी से चिपकाया हुआ था। देखने में तनिक नाटा, कुछ दुबला-पतला और स्त्रैण-सा लग रहा था। गहरे नीले रंग की पगड़ी के नीचे माथे पर लाल फीता लगा रखा था। खाकी फौजी कमीज उसके गोलाकार कंधों पर झूल रही थी। पैरों में 'सैम ब्राउन' के काले जूते थे। छाती पर कारतूसों से भरी पेटी लटक रही थी। पतली कमर पर कसी चौड़ी बेल्ट के एक तरफ रिवाल्वर लटक रही थी और दूसरी तरफ एक छोटी-सी कृपाण।

लड़के ने रिवाल्वर के खोल को सहलाते हुए कारतूसों की नोकों पर हाथ फेरा। पूर्ण आश्वस्ति के साथ उसने अपने चारों ओर नजर मारी।

"यह क्या सिखों का गाँव है?" उसने बड़ी अभद्रता से पूछा। गाँव वाले समझ गए थे कि वह पढ़ा-लिखा शहरी अफसर था। ऐसे लोग किसानों से बातें करते हुए अपनी श्रेष्ठता जतलाने की कोशिश करते रहते हैं। ऐसे लोगों को दूसरे की उम्र या ओहदे का भी कोई लिहाज नहीं होता।

"जी, हुजूर," लंबरदार ने जवाब दिया, "यह तो सदा-सर्वदा से ही सिखों का गाँव रहा है। हमारे काश्तकार मुसलमान थे, पर वे सब यहाँ से चले गए हैं।"

"तुम लोग कैसे सिख हो?" लड़के ने अपने प्रश्न को स्पष्ट करते हुए आँखों में आँखें मिला घूरकर कहा, "मर्द कि नामर्द?"

किसी की समझ में न आया कि क्या जवाब दे! किसी को इतना

विरोध करने का भी साहस नहीं हुआ कि उनसे पूछे कि इस प्रकार की भाषा वे एक गुरुद्वारे के भीतर औरतों और बच्चों की उपस्थिति में किस प्रकार बोल रहे थे।

"तुम्हें पता है कि ट्रेन में कितने हिंदुओं और सिखों की लाशें आई हैं ?" तुम्हें रावलपिंडी, मुल्तान, शेखूपुरा और गुजराँवाला के कत्लेआमों के बारे में खबर है ? जानते हो तो बोलो, इसके लिए क्या कर रहे हो ? अब भी तुम खा-पीकर आराम से सोए पड़े हो और अपने आपको सिख कहते हो ? बहादुर सिख ? योद्धा ?" उसकी चमकदार आँखें चारों ओर उठीं कि देखें किसकी मजाल है कि उसकी बात को काट सके।

लोगों ने शर्म से अपनी गर्दनें झुका लीं।

"हम क्या कर सकते हैं, सरदार जी ?" लंबरदार ने पूछा, "अगर हमारी सरकार पाकिस्तान के खिलाफ लड़े तो हम भी लड़ने को तैयार हैं। यहाँ मनो-माजरा में बैठे हम क्या कर सकते हैं भला ?"

"सरकार ?" नवयुवक विरक्ति से मुँह सिकोड़ते हुए बोला, "तुम सरकार से भी कोई उम्मीद रख सकते हो ? कायर बनियों की इस सरकार से ? पाकिस्तान के मुसलमान क्या अपनी सरकार से हुक्म लेकर तुम्हारी माँ-बहनों की अस्मत लूट रहे हैं ? वे क्या अपनी सरकार को अर्जी देकर ट्रेनों को रोक रहे हैं और उनमें आने-जानेवाले बूढ़ों, बच्चों, औरतों और मर्दों सभी को बिना सोचे-समझे मौत के घाट उतार रहे हैं ? और तुम इसके लिए उम्मीद कर रहे हो अपनी सरकार से ? वाह ! शाबाश, शाबाश !" अपनी रिवाल्वर के खोल पर उसने जोर का एक हाथ मारा।

"लेकिन, सरदार साहिब !" लंबरदार ने हकलाते हुए कहा, "आप ही बताओ हमें क्या करना चाहिए !"

"यह हुई न बात", लड़के ने जवाब दिया, "अब हम बात आगे बढ़ा सकते हैं। आप लोग ध्यान से सुनो।" थोड़ी देर रुककर उसने चारों तरफ देखा और फिर हवा में तर्जनी हिलाते हुए, हर वाक्य पर जोर देते हुए धीरे-धीरे कहना शुरू किया—

"वे एक हिंदू या सिख को मारें, तो तुम दो मुसलमानो को मारो। वे हमारी एक औरत की इज्जत लूटते हैं तो तुम उनकी दो की लूटो। वे हमारे

एक घर को लूटें तो तुम उनके दो को लूटो। वे एक गाड़ी लाशों की भेजें, तो तुम उनकी तरफ दो गाड़ियाँ भेजो। वे हमारे एक काफिले पर हमला करें तो तुम उनके दो पर करो। तभी उधर मार-काट रोकी जा सकेगी। उनको तभी सबक मिलेगा कि हमें भी कत्ल और लूट का खेल आता है।"

लोगों पर अपनी बातों के असर का जायजा लेने के लिए वह पल-भर को रुका। लोग मुँह बाए उसकी बातों को पूरी तवज्जो के साथ सुन रहे थे। केवल मीत सिंह ही नजरें नीची किए बैठा रहा। कुछ कहने के लिए उसने अपना गला खँखारा भी, लेकिन फिर जैसे कुछ सोचकर चुप ही बैठा रहा।

"अच्छा, भाइयो! आप लोग खामोश क्यों बैठे हो? कुछ बोलो तो सही" लोगों को ललकारते हुए उसने कहा।

"मैं कह रहा था कि ···," मीत सिंह ने लड़खड़ाते हुए कहना शुरू किया, "मैं कह रहा था कि ···यहाँ के मुसलमानों ने क्या किया है कि पाकिस्तान में मुसलमानों के किए अत्याचारों का बदला उनके साथ लिया जाए? जिन लोगों ने कुकर्म किए हैं, सजा तो उन्हीं को मिलनी चाहिए।"

नवयुवक ने मीत सिंह को क्रोध से घूरा, "पाकिस्तान में हिंदुओं और सिखों ने क्या किया था कि उनको कत्ल कर दिया गया? वे क्या बेकसूर नहीं थे? उनकी औरतों ने क्या जुर्म किया था कि उनकी इज्जत लूट ली गई? छोटे-छोटे बच्चों ने क्या किसी का खून किया था कि उनके माँ-बाप के सामने उन्हें चीर डाला गया?"

पराजित से हुए मीत सिंह ने फिर गर्दन घुमा ली। नौजवान उसको और भी लताड़ना चाहता था, "क्यों भाई? अब बोलो, तुम क्या करना चाहते हो?"

"मैं तो एक बूढ़ा भाई हूँ। मैं तो किसी पर भी हाथ नहीं उठा सकता, न ही लड़ाइयों में हिस्सा ले सकता हूँ या कातिलों को मार सकता हूँ। पर इतना जरूर जानता हूँ कि बेगुनाह लोगों को मारने में कोई बहादुरी की बात नहीं। रही औरतों की बात, तो तुम्हें भी पता ही होगा कि हमारे आखिरी गुरु गोविंद सिंह ने हिदायत दी थी कि कोई भी सिख किसी मुसलमान औरत को छुएगा तक नहीं। और परमात्मा ही जानता है कि मुसलमानों के हाथों हमारे गुरु पर कितना अत्याचार हुआ था। उन्होंने उनके चारों बेटों को भी

मार डाला । फिर भी ..."

"सिख धर्म की ये बातें तुम किसी और को सिखाओ", नवयुवक ने उपेक्षा से उसकी बात काटते हुए कहा, "तुम जैसे लोग ही इस मुल्क के लिए अभिशाप हैं। औरतों के बारे में तुमने गुरु का कहा तो बता दिया, वह क्यों नहीं बताते जो गुरु ने मुसलमानों के बारे में कहा था। गुरु ने कहा था कि इन तुर्कों से तभी यारी करो जब बाकी की सारी जातें मर- मुक चुकी हों। क्यों, ठीक है न ?"

"हाँ," मीत सिंह ने नर्मी से जवाब दिया, "पर क़ौन कहता है कि इनसे दोस्ताना करो। लेकिन गुरु की अपनी फौज में भी तो मुसलमान सिपाही..."

"और उन्हीं में से एक ने उन्हें सोते में ही छुरा घोंप दिया ?"

मीत सिंह बेचैन- सा हुआ, "ठीक है, पर अच्छे- बुरे लोग तो हर धर्म में ..."

"तो मुझे किसी एक अच्छे मुसलमान का नाम ही बताकर दिखाओ ..."

मीत सिंह उसकी बातों का जवाब दे पाने में असमर्थ था। वह नजरें नीची किए उसके पैरों की ओर देखने लगा। उसका मौन ही उसकी हार की स्वीकृति का प्रतीक था।

"इसको जाने दो। यह तो एक बुजुर्ग भाई है। इसको अपने पाठ पर लगा रहने दो।" कइयों ने समवेत स्वर में कहना शुरू किया।

नौजवान को खुशी हुई। बैठक को पुनः संबोधित करते हुए उसने ऐंठते हुए कहा, "याद रखो", जैसे कोई किसी वेद- वाक्य को दोहरा रहा हो, "याद रखो, और कभी न भूलो कि मुसलमान तलवार को छोड़कर कोई दलील नहीं समझता।"

मजलिस ने फुसफुसाहटों में ही जैसे हामी भरी।

"यहाँ कोई गुरु का प्यारा है ? क्या कोई है जो सिख कौम के लिए अपना बलिदान करने को तैयार हो ? कोई हिम्मती मर्द ?" उसके हर वाक्य में एक ललकार थी।

ग्रामवासियों में बेचैनी- सी फैलने लगी। इस जोशीले भाषण ने उनके रोष को जगा दिया था और वे अपनी मर्दानगी जताने को बेकरार होने लगे थे। पर साथ ही मीत सिंह का वहाँ होना उन्हें कुछ परेशान भी कर रहा था कि कहीं वे उसके प्रति वफादारी से चूक तो नहीं रहे थे।

लंबरदार ने शिकायती स्वर में नौजवान से पूछा, "फिर बताओ, हमें क्या करना होगा ?"

"मैं बताता हूँ कि हमें क्या करना होगा," लड़के ने अपनी ओर इशारा करके कहा, "अगर तुम्हारे अंदर हिम्मत है तो", कुछ रुककर वह बोला, "कल मुसलमानों से भरी एक ट्रेन पाकिस्तान जाने के लिए पुल से गुजरेगी। अगर तुम लोग मर्द हो तो गाड़ी उतनी ही लाशों को लेकर पाकिस्तान जाएगी, जितनी लेकर वह यहाँ आई थी !"

एक सर्द चिपचिपी- सी अनुभूति उपस्थित जनसमूह में फैल गई। लोग व्याकुलता से खाँसने- खँखारने लगे।

"गाड़ी में मनो- माजरा के मुसलमान होंगे" मीत सिंह ने ऊपर देखे बिना ही कहा।

"भाई, लगता है तुम्हें सबकुछ पता है। क्यों ?" नवयुवक आवेश में भरकर चिल्लाया, तुमने उनके टिकट काटे हैं क्या ? या कि तुम्हारा लड़का रेलवे का बाबू लगा हुआ है ? मैं नहीं जानता कि ट्रेन में जानेवाले मुसलमान कहाँ के हैं। न ही मुझे इस बात की कोई फिकर है कि वे कहाँ के हैं ! मेरे लिए इतना ही काफी है कि वे मुसलमान हैं। वे जीते जी नदी पार नहीं कर सकते। अगर तुम लोग मेरी बातों से सहमत हो तो हम बात आगे बढ़ा सकते हैं। लेकिन अगर तुम लोग डर रहे हो तो बोल दो। हम लोग तुम्हें सत श्री अकाल कहकर चले जाएँगे और मर्दों की तलाश करने किसी दूसरी जगह जाएँगे।"

खामोशी का एक और लंबा आलम।

नवयुवक ने अपनी रिवाल्वर के खोल को फिर थपथपाया और लोगों के चेहरे पढ़ने के लिए नजर दौड़ाई।

"पुल पर तो मिलिट्री का पहरा है।" आवाज मल्ली की थी। वह बाहर अँधेरे में खड़ा- खड़ा सब सुन रहा था। यद्यपि मनो- माजरा में अकेले आने की हिम्मत वह नहीं कर सकता था, पर वह मनो- माजरा में उपस्थित था और अपने दल- बल के साथ इतनी दिलेरी से गुरुद्वारे जैसी जगह में घुसा आ रहा था।

"मिलिट्री या पुलिस की फिकर करने की जरूरत नहीं। कोई कुछ नहीं

कहेगा। इसका जिम्मा हमारा !" युवक ने उसकी तरफ देखकर पूछा, "कौन आगे आ रहा है ?"

"आपके मकसद के लिए अपनी जान हाजिर है !" मल्ली ने शौर्य में भरकर जवाब दिया। जग्गा से उसके पिटने की बात पूरे गाँव में फैल चुकी थी। अपनी प्रतिच्छवि सुधारने का अच्छा मौका उसके सामने था।

"शाबाश", नौजवान ने कहा, "चलो एक तो आगे आया। सिखों को बनाते वक्त गुरु ने पाँच प्यारों का बलिदान माँगा था। वे सिख अति-मानव थे। आज हमें पाँच से कहीं ज्यादा गुरु के प्यारों की जरूरत है। आज कौन-कौन अपनी जान कुर्बान करने को आगे आ रहा है ?"

मल्ली के चार साथी चौखट पार कर भीतर घुसे। उनके पीछे कई और आगे बढ़े, जिनमें से ज्यादातर पाकिस्तान से आए शरणार्थी थे। गाँव के कुछ लोग भी उठकर खड़े हो गए, जो थोड़ी देर पहले ही मुसलमान साथियों के जाने का शोक मना रहे थे।

युवक हर आगे आनेवाले को शाबाशी देते हुए अलग बैठाता जा रहा था। पचास से भी ऊपर की संख्या में लोग आगे आ चुके थे।

"बस, काफी हैं", लड़के ने हाथ ऊपर उठाकर कहा, "अगर मुझे और लोगों की जरूरत पड़ेगी तो मैं कहूँगा। आओ, हम सभी इस जोखिम भरे काम की सफलता के लिए प्रार्थना करें।"

सभी उठकर खड़े हो गए। औरतें भी अपने बच्चों को जमीन पर लेटाकर मर्दों के साथ उठ खड़ी हुईं। लोग पालकी पर रूमाल में लिपटे गुरुग्रंथ साहिब की ओर अरदास की मुद्रा में हाथ जोड़कर खड़े हो गए। नौजवान मीत सिंह की ओर मुड़ा और व्यंग्यपूर्वक बोला—

"अरदास शुरू करवाओ, भाई जी !"

"मकसद आपका है, भाई ने विनम्रतापूर्वक कहा, "आप ही शुरू करो न !"

लड़के ने गला साफ किया और आँखें मूँदकर वह दसों पातशाहों के नाम का जाप करने लगा। अंत में उसने अपने जोखिम की सफलता के लिए गुरुओं के आशीर्वाद का आह्वान किया। संगत ने घुटनों के बल झुककर जोर-जोर से उद्घोषणा करते हुए माथे टेके—

"नानक नाम
चढ़दी कलाँ
तेरे भाणे
सर्वत दा भला।"

संगत ने फिर खड़े होकर अलापना शुरू किया—

"राज करेगा खालसा
आकी रहे ना कोय
खुआर होए सब मिलेंगे
बचे शरण जो होय।"

'सत श्री अकाल' के जोशीले स्वरों के साथ यह छोटा-सा समारोह समाप्त हुआ। अगुआ लड़के को छोड़कर बाकी सब लोग बैठ गए। प्रार्थना ने जैसे उस पर नम्रता का मुलम्मा चढ़ा दिया हो। हाथ जोड़कर वह लोगों से क्षमा याचना करने लगा—

"बहनो और भाइयो! रात के इस पहर आपको परेशान करने के वास्ते मैं माफी चाहता हूँ। भाई जी, आप से भी। और लंबरदार साहिब, आप भी इस तकलीफ के वास्ते और गुस्से में मैं जो कुछ बोल गया, उसके वास्ते हमें माफ करें। पर हम जो कुछ भी कर रहे हैं, गुरु की सेवा में कर रहे हैं।" फिर अलग बैठाए लोगों की ओर रुख करके उसने कहा, "सभी स्वयंसेवक दूसरे कमरे में आ जायँ! बाकी सब लोग आराम करें। सत श्री अकाल!"

"सत श्री अकाल!" कुछ लोग जवाब में बोले। अहाते की तरफवाले मीत सिंह के कमरे से औरतों और बच्चों को दूसरे कमरे में भेज दिया गया। सभी आगंतुक स्वयंसेवकों के साथ उस कमरे में घुस आए। कमरे में कुछ और दीया-बत्तियों का इंतजाम किया गया। युवक ने खटिया पर एक नक्शा फैलाया और उस पर लालटेन की रोशनी डाली। नक्शे को ध्यान से देखने के लिए स्वयंसेवकों ने उसे घेर लिया।

"तुम सबको अपनी जगह से पुल और नदी की स्थिति दिखाई दे रही है न?"

"हाँ, हाँ!" सभी ने अधीर होते हुए कहा।

"तुममें से किसी के पास बंदूकें हैं?"

सब एक- दूसरे का मुँह ताकने लगे । बंदूकें तो किसी के पास भी नहीं थीं ।

"खैर, कोई बात नहीं", अगुआ ने कहा, "हमारे पास छह- सात रायफलें होंगी और हो सकेगा तो कुछ स्टेनगनों का भी इंतजाम कर लेंगे । अपनी तलवारें और भाले तुम सब भी लेते आना । वे बंदूकों से ज्यादा काम आएँगे ।" थोड़ी देर मौन रहने के बाद वह फिर बोला, "योजना इस तरह है कि कल सूरज डूबने के बाद, जब अँधेरा घिर आए, हम लोग पुल के पहले बिस्ते पर एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक एक रस्सा बाँध देंगे, इंजन की चिमनी से कोई एक हाथ ऊपर को । जब गाड़ी वहाँ से गुजरेगी तो उसकी छत पर बैठे सभी लोग साफ हो जाएँगे, कम- अज- कम चार- पाँच सौ तो होंगे ही ।"

श्रोताओं की आँखें प्रशंसा से चमक उठीं । एक- दूसरे की ओर सिर हिलाते हुए उन्होंने चारों तरफ नजर दौड़ाई । लंबरदार और मीत सिंह दरवाजे पर खड़े सब सुन रहे थे ।

अगुआ युवक गुस्से में भरकर उनकी तरफ घूमा, "भाई जी, आपको इससे क्या लेना- देना ? आप जाकर अपना पाठ क्यों नहीं करते ?"

लंबरदार और मीत सिंह दोनों शर्मिंदे से हुए मुड़ पड़े । लंबरदार जानता था कि अगर वह रुका रहता तो उसे भी वहाँ से जाने को कह दिया जाता । और हुआ भी ऐसा ही । लड़के ने पीठ- पीछे से ही व्यंग्य- बाण छोड़ा, "और लंबरदार साहिब, आप रपट लिखवाने के लिए पुलिस स्टेशन हो आइए !"

सभी ठहाके लगाने लगे ।

युवक ने हाथ उठाकर सबको चुप होने का संकेत किया और कहने लगा—

"गाड़ी आधी रात के बाद चंदन नगर से चलेगी । इसमें कोई बत्ती नहीं होगी । इंजन पर भी नहीं । हम रास्ते में हर सौ- सौ गज पर टार्चों के साथ एक- एक आदमी को खड़ा कर देंगे । जैसे ही ट्रेन एक के सामने से गुजरेगी, वह आगेवाले दूसरे को संकेत दे देगा । वैसे भी तुम्हें सुनाई तो दे ही जाएगा । तलवारें और भाले लिए लोग पुल पर तैनात रहेंगे जो गाड़ी की छत से गिरनेवालों को मार- मारकर नदी में फेंकते जाएँगे । बंदूकोंवाले आदमी थोड़ा और आगे खड़े होंगे । वे खिड़कियों से लोगों पर गोलियाँ दागेंगे । गाड़ी के भीतर से मुकाबले का सवाल ही नहीं उठता । गाड़ी में सिर्फ दर्जन- भर ही पाकिस्तानी

सिपाही होंगे। फिर अँधेरे में उन्हें पता भी नहीं चल पाएगा कि गोली किधर को चलाएँ। बंदूकों में कारतूसें भरने का उन्हें मौका भी तो नहीं मिलेगा। अगर उन्होंने गाड़ी रोक भी दी, तो भी हम उन्हें ठिकाने लगा लेंगे। उनके मुकाबले हम लोग कई गुना ज्यादा लोगों को मार सकेंगे।"

योजना उम्दा थी, एकदम पक्की। जवाबी हमले के खतरे की संभावना न के बराबर थी। सभी संतुष्ट नजर आ रहे थे।

"आधी रात बीत चुकी है," लड़के ने नक्शे को तहाते हुए कहा, "तुम सब थोड़ा- थोड़ा सो लो। कल हम लोग पुल पर चलेंगे और तय करेंगे कि कहाँ किसको तैनात करना है। वाहे गुरु दा खालसा, वाहे गुरु जी दी फतह !"

"वाहे गुरु दी फतह !" बाकियों ने भी दोहराया।

सभा विसर्जित हुई। आगंतुकों ने गुरुद्वारे में ही अपने सोने के लिए जगह बना ली। मल्ली और उसके गिरोह के लोग भी वहीं टिक गए। कई गाँववाले यह सोचकर अपने घरों को लौट गए कि कहीं साजिश के वक्त गुरुद्वारे में उपस्थित होने के जुर्म में लपेट न लिए जायँ।

लंबरदार अपने साथ दो आदमियों को लेकर चंदन नगर थाने की तरफ चल दिया।

"वेल, इंस्पेक्टर साहिब ! मारने दो उनको", हुकुमचंद ने उकताते हुए कहा, "मारने दो जो जिसको मारता है। बस, दूसरे थानों को मदद के लिए संदेश भेजते रहो और उनके रिकार्ड रखते रहो। हमारे पास इस बात के सबूत होने चाहिए कि हमने अपनी ओर से उन्हें रोकने की भरसक कोशिश की थी।"

हुकुमचंद बेहद शिथिल से लग रहे थे। हफ्ते- भर के ही अंदर वे ऐसे बुढ़ा गए थे कि पहचान में ही नहीं आ रहे थे। बालों की जड़ों में सफेदी और बढ़ आई थी। हर दिन हड़बड़ी में हजामत बनाने के कारण ठुड्डी जगह- जगह से कटी पड़ी थी। गालें लटक आई थीं और ठुड्डी से मांस की कितनी ही ढीली परतें झूल रही थीं। आँखें बिल्कुल सूखी थीं, फिर भी वे कीचड़ पोंछने के बहाने उन्हें हर वक्त मलते रहते।

"मैं क्या करूँ ?", वे बिलख पड़े, "सारी दुनिया पर पागलपन सवार

है। क्या फर्क पड़ता है अगर एक हजार और मर जाएँ तो ! बुलडोजर मँगवाकर औरों की तरह उन्हें भी दफना देंगे। और अगर ये सब नदी पर ही होने जा रहा है तो अबकी बुलडोजरों की भी जरूरत नहीं पड़नी। उठाकर लाशों को नदी में ही फेंक देंगे। चालीस करोड़ लोगों के बीच चारेक सौ की बिसात ही क्या है ? महामारियों में तो इसके दस-दस गुने मरते हैं, तब क्या किसी को फिक्र होती है ?"

सब-इंस्पेक्टर जानता था कि यह हुकुमचंद का असली रूप नहीं था। वे तो सिर्फ अपनी आत्मा से विषाद का भूत उतारने के वास्ते ही ऐसे कह रहे थे। काफी देर तक धैर्यपूर्वक इंतजार करने के बाद उनकी टोह लेते हुए सब-इंस्पेक्टर ने कहा, "जी सर, मैं सभी घटनाओं का रिकार्ड रख रहा हूँ और इसका भी कि हमने क्या-क्या किया। कल रात हमने चंदननगर के भी मुसलमानों को निकालकर कैंपों में भेज दिया। मुझे फौज पर और खुद अपने ही सिपाहियों पर भरोसा नहीं था। हमले करनेवालों को मैं अब तक यही कहकर रोकता रहा था कि शहर में पाकिस्तानी फौजें भी हैं। इसी डर से वे लोग शहर में नहीं घुसे और मैं ऐन मौके पर मुसलमानों को सही-सलामत वहाँ से निकाल सका।

हमलावरों को जैसे ही मेरी चालाकी का पता चला, उन्होंने मुसलमानों के घरों को लूटना और जलाना शुरू कर दिया। कुछ लोगों ने तो मुझे पकड़ने के लिए थाने में आने की भी योजना बना ली थी, पर मौके पर पता लगने के कारण मैं बच गया। लेकिन, आपको क्या बताऊँ, सर, मुसलमान फिर भी मुझ पर तोहमत लगा रहे हैं कि मैंने उन्हें उनके घरों से निकलवाकर उनके घर-बार लुटवा दिए। उधर सिख कोस रहे हैं कि मैंने उन्हें मनचाही लूटपाट नहीं करने दी। और अब मैं सोचता हूँ कि सरकार भी मुझ पर कोई न कोई इल्जाम लगाकर गालियाँ ही देगी। पर मुझे भी किसी की परवाह नहीं पड़ी।" सब-इंस्पेक्टर ने अपना अँगूठा तानकर नचाते हुए मुस्कराकर कहा।

हुकुमचंद का मन उस दिन अपने आपे में नहीं था। लगता था कि उन्हें सब-इंस्पेक्टर की रिपोर्ट का असली संकेत समझ में नहीं आ पाया था।

"हाँ, इंस्पेक्टर साहिब, हमें और आपको बदनामी के सिवा और कुछ नहीं मिलनेवाला। हम भी कर ही क्या सकते हैं ? सभी को गोलियाँ दागने का शौक

चर्रा आया है। लोग खचाखच भरी गाड़ियों पर, सड़क चलते काफिलों पर, मोटरगाड़ियों पर, ऐसे रायफलें खाली कर रहे हैं जैसे लाल रंग से होली ही खेल रहे हों। हाँ, खून की होली ही तो है यह। वहाँ पर जाने का मतलब ही क्या है जहाँ गोलियाँ उड़ रही हों। गोलियों के पास रुककर सोचने के लिए दिमाग नहीं होता कि ये मिस्टर हुकुमचंद हैं, इनको नहीं छूना है; न ही किसी गोली पर यह लिखा होता कि यह फलाँ या फलाँ ने चलाई। अगर पता चल भी जाए कि किसने चलाई तो भी, एक बार लग जाए तो क्या फर्क पड़ेगा। नहीं इंस्पेक्टर साहिब, पागलखाने में कैद एक तंदुरुस्त आदमी की भलाई तो इसी में है कि वह भी पागलों के बीच पागल ही बना रहे और मौका पाते ही दीवार फाँदकर बच निकले।"

सब- इंस्पेक्टर ऐसे उपदेश सुनने का अभ्यस्त हो चुका था और जानता था कि इनसे मजिस्ट्रेट के आंतरिक रूप का कोई वास्ता नहीं था। उसे हैरानी तो इस बात की हो रही थी कि मजिस्ट्रेट साहब उसके इशारे को समझ क्यों नहीं पा रहे थे। वे तो खुद ही बातों को घुमा- फिराकर कहने के लिए प्रसिद्ध थे। किसी बात को सीधे- सीधे कह देने को वह बेवकूफी समझते थे। उनके कायदे से तो किसी सपाट बात को भी घुमा- फिराकर कहना ही व्यवहार- कुशलता है। इससे आदमी किसी मुसीबत में फँसने से बचा रहता है। किसी को कहने का मौका नहीं मिलता कि फलाँ ने यह कहा, वह कहा। साथ ही, लोग ऐसे आदमी को समझदार और बुद्धिमान भी समझते हैं। हुकुमचंद लोगों की वक्रोक्तियों को भी उतनी ही सहजता से पकड़ने में माहिर थे, जितनी सहजता से अपनी उन्हें समझाने में। आज तो लगता था जैसे उन्होंने अपने दिमाग को सोने ही भेज दिया हो।

"कल आप चंदननगर में होते तो देखते!" सब- इंस्पेक्टर घुमा- फिराकर बातचीत को फिर उसी बिंदु पर ले आया था जो उसके लिए सिरदर्द का कारण बना हुआ था। "अगर मैं वहाँ पाँच मिनट भी देर से पहुँचता तो एक भी मुसलमान जिंदा न बचा होता। लेकिन असलियत यह है कि एक भी मुसलमान मारा नहीं गया और मैं उन सबको सही- सलामत निकाल बाहर ले गया।" सब- इंस्पेक्टर ने 'एक भी नहीं' और 'सब' शब्दों को खासा जोर देकर कहा और हुकुमचंद की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगा।

लगता था उसके तीर का असर हुआ था। आँखों के कोनों को मलना बंद करके हुकुमचंद ने कुछ और जानकारी लेने के बहाने पूछना शुरू किया,

"तुम्हारे कहने का मतलब है कि चंदननगर में अब कोई भी मुस्लिम परिवार नहीं बचा है।"

"नहीं, सर। एक भी नहीं।"

"मैं समझता हूँ", गला साफ करते हुए हुकुमचंद ने कहा, "कि इस मुसीबत के गुजर जाने पर लोग वापस लौट आएँगे।"

"हो सकता है," सब-इंस्पेक्टर ने जवाब दिया, "पर लौटने के लिए लोगों के पास बचा ही क्या है? उनके घरों को या तो जला डाला गया या फिर लोगों ने उन पर कब्जे कर लिए हैं। और अगर कोई लौटकर आ भी जाएगा तो कौड़ियों की इज्जत नहीं होगी उसकी।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। हालात हमेशा ऐसे ही नहीं रहेंगे। देखना, कैसे चीजों का रुख बदलता है। हफ्ते-भर के अंदर-अंदर ये सब चंदननगर लौट आएँगे और सिख-मुसलमान एक ही घड़े से पानी पीते नजर आएँगे। हुकुमचंद ने कह तो दिया, लेकिन अपनी ही आवाज में वे झूठी आशाओं की छाप को ताड़ सकते थे। सब-इंसेक्टर ने तो भाँप ही लिया था—

"हो सकता है आपकी बात ठीक हो सर, लेकिन उसमें भी तो एक हफ्ते से कुछ ज्यादा का ही वक्त लग जाएगा। पर चंदननगर के मुसलमानों को आज रात की ही गाड़ी से पाकिस्तान भेजा जा रहा है। परमात्मा ही जानता है कि कितने पुल को जीते-जागते पार कर सकेंगे; जो कर भी लेंगे वे ऐसी जल्दी में तो यहाँ वापस लौटने के नहीं।"

सब-इंस्पेक्टर की चोट फिर ठिकाने पर लगी थी। हुकुमचंद का मुँह पीला पड़ गया। अपने मन की हालत की असलियत वे अब नहीं छुपा पा रहे थे, "तुम्हें कैसे पता कि चंदननगर के रिफ्यूजी आज रात की गाड़ी से जा रहे हैं?" उन्होंने पूछा।

"मुझे कैंप-कमांडर ने बताया। कैंप पर ही हमला होने का अंदेशा था, इसीलिए उसने पहली ही गाड़ी से रिफ्यूजियों को वहाँ से निकालने का इंतजाम कर लिया। अगर वे नहीं जाते हैं तो शायद उनमें से एक भी जिंदा न बचे। चले जाएँ और गाड़ी तेज रफ्तार से चल रही हो तो शायद कुछ तो बच ही जाएँगे। गाड़ी को पटरियों से उतारने का लोगों का इरादा नहीं है, उनका इरादा तो इसे लाशों से भरकर पाकिस्तान भेजने का है।"

हुकुमचंद ने हिलते हुए अपनी कुर्सी के हत्थे को कसकर पकड़ लिया, "कैंप कमांडर को जाकर क्यों नहीं चेता देते ? वह उनका कल का जाना तो रोक ही सकता है !"

"गरीब परवर", सब-इंस्पेक्टर ने धैर्यपूर्वक उन्हें समझाने की भरसक कोशिश की, "मैंने उसको ट्रेन पर होनेवाले हमले की बाबत नहीं बताया, क्योंकि अगर कहीं वह जाना टाल देता है तब तो सारा कैंप ही उजाड़ दिया जाएगा। बीस-तीस हजार हथियार-याफ्ता लोगों का हुजूम खून का प्यासा ताक लगाए बैठा है। मेरे पास सिर्फ पचास सिपाही हैं और उनमें से एक भी किसी सिख पर गोली नहीं चलाएगा। लेकिन हुजूर के प्रभाव से भीड़ बात मान जाए तो मैं कैंप कमांडर को कह दूँगा कि गाड़ी पर हमला होने की संभावना है और समझा दूँगा कि जाना अभी टाल दें।"

सब-इंस्पेक्टर ने वार छुपकर किया था।

"नहीं, नहीं", मजिस्ट्रेट हकलाते हुए बोला, "मजिस्ट्रेट हो या कोई भी। हथियारबंद भीड़ किसी के कहने पर कहाँ रुकती है ! नहीं, नहीं, हमें कोई और तरीका सोचना होगा।"

हुकुमचंद अपनी कुर्सी में वापस धँस गए। उन्होंने अपने चेहरे को हाथों से ढाँप लिया। फिर माथे पर धीरे-धीरे मुक्के मारने लगे; बालों को ऐसे नोचने लगे जैसे उससे कुछ होने-हवाने ही वाला था।

"उन दोनों का तुमने क्या किया जिनको लाला के कत्ल की बाबत गिरफ्तार किया था ?" कुछ देर बाद उन्होंने पूछा।

सब-इंस्पेक्टर को इस वक्त उनके बारे में पूछे जाने का कोई तुक नहीं नजर आ रहा था।

"अभी लॉक-अप में ही हैं। आपने ही हुक्म दिया था कि इस मुसीबत के टलने तक उनको यहीं रखा जाए। हालात ऐसे ही बने रहे तो शायद उनको महीनों लॉक-अप में ही रखना पड़ेगा।"

"कोई ऐसा मुसलमान मर्द या औरत पीछे रह गए हैं जो मनोमाजरा छोड़कर जाने से इन्कार कर रहे हों ?"

"नहीं, सर ! एक भी नहीं ! आदमी, औरतें, बच्चे सब चले गए हैं।" सब-इंस्पेक्टर ने जवाब दिया। पर अब भी वह यह समझने में असमर्थ था कि

हुकुमचंद के मन में क्या उमड़-घुमड़ रहा था।

"जग्गा की माशूका—उस जुलाहे की बेटी की क्या खबर है, जिसके बारे में तुमने मुझे बताया था ? क्या नाम बताया था उसका ?"

"नूराँ !"

"हाँ, नूराँ ! वह कहाँ है ?"

"वह भी चली गई है। उसका बाप एक तरह से मनो-माजरा के मुसलमानों का अगुआ था। लंबरदार ने मुझे उसके बारे में काफी कुछ बताया। उसकी बस यही एक औलाद थी—नूराँ। इसी लड़की के साथ जग्गा डाकू का इश्क चल रहा था।"

"और यह दूसरा ? तुमने बताया था न कि कोई पोलिटिकल वर्कर है ?"

"जी, सर, पीपुल्स पार्टी का, या ऐसा ही कुछ ···मुझे तो लगता है, मुस्लिम लीग का मेंबर है और नकली पहचान बताता घूम रहा था। मैंने तो खुद उसे नंगा करके देखा है कि ···"

"आर्डर निकालने के लिए तुम्हारे पास सादे आफ़िशियल पेपर हैं ?" हुकुमचंद ने बेताबी से उसे टोका।

"जी सर !" सब-इंस्पेक्टर ने जवाब दिया और छपे हुए पीले कागजों के कई पन्ने निकालकर हुकुमचंद की ओर बढ़ा दिए।

हुकुमचंद ने अपना हाथ बढ़ाकर सब-इंस्पेक्टर की जेब से उसकी कलम निकाली और कागजों को मेज पर फैलाते हुए पूछने लगा, "कैदियों के नाम क्या हैं ?"

"जग्गा बदमाश और···"

"जग्गा बदमाश" हुकुमचंद ने टोका और कागज के रिक्त स्थानों को भरकर नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिए।

"जग्गा बदमाश और ···?" दूसरा कागज सामने करते हुए उन्होंने फिर पूछा।

"इकबाल मोहम्मद या मोहम्मद इकबाल ···कुछ पक्का नहीं कह सकता।"

"इकबाल मोहम्मद नहीं इंस्पेक्टर साहिब ! और मोहम्मद इकबाल भी नहीं ! उसका नाम है इकबाल सिंह !" बड़ी सफाई से लिखते हुए उन्होंने कहा।

सब- इंस्पेक्टर को हैरानी हो रही थी कि हुकुमचंद को कैसे पता चला। कहीं मीत सिंह तो आकर इनसे नहीं मिला ?

"सर, आपको हर किसी की बात पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए। मैंने उसे नंगा करवाकर अपनी आँखों से ..."

"तुम क्या समझते हो कि कोई पढ़ा- लिखा मुसलमान ऐसी गड़बड़ी के दिनों में इस इलाके में आने की हिम्मत कर सकता था। और इंस्पेक्टर साहिब ! तुम क्या सोचते हो कि कोई पार्टी इतनी बेवकूफ होगी कि मुसलमानों के खून के प्यासे सिखों के गाँव में सिख किसानों को शांति का उपदेश देने एक मुसलमान वर्कर को भेजेगी ? तुम्हारी सोचने की ताकत को क्या हो गया है ?"

सब- इंस्पेक्टर हारा हुआ- सा चुप लगा गया।

बात सही लग रही थी—भला कौन पढ़ा- लिखा इंसान किसी भी ऐसे मकसद के लिए अपनी जान जोखिम में डालना चाहेगा। और फिर इकबाल की दाईं कलाई में उसने स्टील का कड़ा भी तो देखा था।

"हुजूर का सोचना सही ही होगा। पर इसका ट्रेन पर होनेवाले हमले को रोकने से क्या वास्ता ?"

"मैं जानता हूँ कि मैं सही हूँ", हुकुमचंद ने जोश के साथ कहा, "और तुम्हें भी जल्दी ही पता चल जाएगा कि कैसे ! चंदननगर जाते- जाते जरा इस पर गौर करना। वहाँ पहुँचते ही दोनों को रिहा कर देना और देखना कि वे तुरंत मनो- माजरा पहुँच जाएँ। अगर हो सके तो उन्हें एक ताँगा कर देना। शाम तक उनका गाँव में पहुँच जाना बहुत जरूरी है।"

सब- इंस्पेक्टर ने कागजों को सँभालकर सलाम ठोंका और अपनी साइकिल तेजी से थाने की ओर बढ़ा ली। शनैः- शनैः उसके मस्तिष्क से शंका के बादल छँटने लगे। हुकुमचंद की योजना भारी वृष्टिपात के बाद धुले हुए आकाश की तरह बिल्कुल साफ- साफ उसकी समझ में आने लगी।

"तुम्हें मनो- माजरा कुछ बदला हुआ- सा लगेगा !" मेज के उस तरफ खड़े इकबाल और जग्गा को संबोधित करते हुए सब- इंस्पेक्टर ने कहा।

"बाबू साहिब, आप बैठ क्यों नहीं जाते !" सब- इंस्पेक्टर ने इस बार

इकबाल से सीधे-सीधे बात की, "आप बैठ जाइए। ओए, क्या नाम है तेरा ? बाबू साहिब के लिए कुर्सी क्यों नहीं लाता ?" उसने किसी सिपाही को आवाज दी और फिर इकबाल की ओर मुखातिब हो गया, "मैं जानता हूँ कि आप मेरे से नाराज होंगे। पर मेरा कसूर उसमें जरा भी नहीं था। मुझे भी अपनी ड्यूटी करनी होती है। आप तो पढ़े-लिखे हैं। आप समझ सकते हैं कि अगर हम, लोगों के साथ दूसरी तरह का व्यवहार करने लगे तो फिर कैसे काम चले !"

सिपाही इकबाल के लिए कुर्सी ले आया।

"बैठ जाइए न ! जाने के पहले आप कुछ पीएँगे ? चाय या कुछ और ...?" बड़ी मिठास से सब-इंस्पेक्टर ने पूछा।

"आपकी बड़ी मेहरबानी ! मैं खड़ा ही ठीक हूँ ! जेल की कोठरी में इतने दिन बैठा ही तो रहा हूँ। अगर कोई एतराज न हो तो आप जरा जल्दी ही अपनी फॉरमेलिटीज़ पूरी कर लीजिए, ताकि मैं तुरंत यहाँ से जा सकूँ।" उसकी मुस्कुराहट का प्रत्युत्तर दिए बिना ही इकबाल ने कहा।

"आप जहाँ जाना चाहो और जब जाना चाहो, जा सकते हो। मैंने आपको मनो-माजरा ले जाने के वास्ते ताँगा मँगवा भेजा है। एक हथियार-याफ्ता सिपाही भी मैं आपके साथ कर दूँगा। इन दिनों चंदननगर में आपका होना या अकेले सफर करना खतरे से खाली नहीं है।"

सब-इंस्पेक्टर एक पीला-सा कागज उठाकर पढ़ने लगा—

"जगत सिंह, वल्द—आलम सिंह, उम्र—चौबीस साल, जाति—सिख, गाँव—मनो-माजरा, दस नंबरी बदमाश ..."

"जी हुजूर !" जग्गा ने मुस्कुराते हुए टोका। पुलिस द्वारा किए गए व्यवहार का उस पर कोई असर नहीं पड़ा दिख रहा था। सत्ता के साथ उसका समीकरण बहुत सरल था। वह उसके बिल्कुल दूसरे छोर पर पड़ता था। उसे लोगों की विशिष्टताओं से कोई मतलब नहीं था। सब-इंस्पेक्टर और सिपाही—उसके लिए दोनों एक जैसे ही थे। दोनों उसको आए दिन गिरफ्तार किया करते थे; उससे गाली-गलौज करते थे और मारते-पीटते थे। चूँकि ये लोग भावनारहित होकर उसे मारते-पीटते थे, इसलिए उसके तईं इनके कोई खास नाम नहीं थे। ये सभी केवल सिपाही थे—पुलिस। ये लोग उसके लिए सिर्फ एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे, जिनको झाँसा देना उसका लक्ष्य बन

गया था, अगर कभी नहीं बन पाता तो यह उसकी बदकिस्मती थी।

"तुमको रिहा किया जा रहा है। पर तुम्हें मिस्टर हुकुमचंद—डिप्टी कमिश्नर के सामने पहली अक्तूबर, 1947 को दस बजे हाजिर होना जरूरी है। यहाँ अपना अँगूठा लगाओ!"

जगत सिंह का अँगूठा अपने हाथ में पकड़ स्याही के गीले पैड पर रगड़कर सब-इंस्पेक्टर ने उससे कागज पर अँगूठे के निशान लगवाए।

"मुझे अब जाने का हुक्म हो?" जग्गे ने पूछा।

"तुम भी बाबू साहिब के साथ ताँगे में जा सकते हो, नहीं तो शाम के पहले घर नहीं पहुँच सकोगे।" जग्गा की ओर देखते हुए उसने वही बात जग्गा से भी दोहराई, "मनो-माजरा तुम्हें अब पहले जैसा नहीं लगेगा।"

इकबाल और जग्गा, दोनों ने ही मनो-माजरा के मुतल्लिक सब-इंस्पेक्टर की टिप्पणी पर अधिक ध्यान नहीं दिया।

सब-इंस्पेक्टर ने अब दूसरा कागज अपने सामने फैलाया और पढ़ने लगा, "मिस्टर इकबाल, सोशल वर्कर!"

इकबाल ने रुखाई से कागज की ओर देखा, "मुस्लिम लीग का मेंबर मोहम्मद इकबाल नहीं? आप तो अपनी मनमर्जी से ही असलियतों ओर दस्तावेजों को तोड़ने-मरोड़ने में माहिर मालूम होते हैं?"

सब-इंस्पेक्टर ने खीसें निपोरीं, "गलतियाँ तो सभी से होती हैं। टु एर्र इज़ ह्यूमन, टु फ़ारगिव डिवाइन', उसने अंग्रेजी में कहा, मैं अपनी गलती कबूल करता हूँ।"

"बड़ी मेहरबानी है, आपकी," इकबाल ने जवाब दिया, "मेरा तो यह खयाल था कि हिंदुस्तानी पुलिस कभी गलती कर ही नहीं सकती।"

"आप चाहें तो मेरा मजाक उड़ा सकते हैं। पर शायद आपको इस बात का अहसास नहीं है कि अगर आप, जैसा कि आप चाहते थे, मनो-माजरा में भाषण देते हुए फिरते और कहीं सिखों के हाथ पड़ जाते तो उन्होंने आपकी कोई भी दलील नहीं सुननी थी। उन्होंने आपको नंगा करके देखना था कि आपकी सुन्नत हुई थी कि नहीं। आजकल बगैर दाढ़ी और केशोंवालों के मुसलमान होने या न होने का पता लगाने का बस यही तरीका लोगों ने अपना रखा है और पता लगते ही मार डालते हैं। आपको तो मेरा

अहसानमंद होना चाहिए ।"

इकबाल ज्यादा बातें करने के मूड में नहीं था । और फिर इस विषय पर तो वह किसी से भी बात करना नहीं चाहता था । जिस तरीके से सब-इंस्पेक्टर ने इस बात को छेड़ा था, उससे भी वह खासा नाराज नजर आ रहा था ।

"आप लोगों को मनो-माजरा में बड़ा बदलाव नजर आएगा ।" सब-इंस्पेक्टर ने तीसरी बार उसे चेताया था, पर फिर भी, न तो इकबाल ने और न ही जग्गा ने कोई प्रतिक्रिया जाहिर की । इकबाल ने देर से हाथ में पकड़ी हुई किताब को मेज पर रख दिया और बिना धन्यवाद या अलविदा का एक शब्द भी कहे मुड़ पड़ा ।

जग्गा ने अपने जूते टटोलने के लिए फर्श पर पैर घुमाए !

"मनो-माजरा से सारे मुसलमान चले गए हैं ।" सब-इंस्पेक्टर ने नाटकीयता से कहा ।

जग्गा के पैर जहाँ के तहाँ थमकर रह गए, "कहाँ चले गए हैं !"

"कल उनको रिफ्यूजी कैंप में ले जाया गया था । आज रात वे सब ट्रेन से पाकिस्तान चले जाएँगे ।"

"क्यों, क्या गाँव में कोई फसाद हो गया था, इंस्पेक्टर साहिब ? क्यों जाना पड़ा उनको ?"

"अगर वे नहीं जाते तब जरूर हो जाता फसाद । बाहर से बहुत से आदमी बंदूकें लेकर आए हुए हैं जो चुन-चुनकर मुसलमानों को मार रहे हैं, मल्ली और उसके गिरोह के साथी भी उनके साथ मिल गए हैं । अगर मुसलमान मनो-माजरा छोड़कर न गए होते तो अब तक मल्ली ने उनका सफाया कर दिया होता ! उसने उनका सारा माल-सामान भी लूट लिया है—गाएँ, भैंसें, बैल, घोड़े-घोड़ियाँ, मुर्गे-मुर्गियाँ, बर्तन-भाँड़े—सारा कुछ । मल्ली ने ठीक ही किया ।"

सब-इंस्पेक्टर ने अपने होठों को गोल करते हुए व्यंग कसा, "तू बातें ही बड़ी-बड़ी करता है, सरदारा ! गफलत से उसके केश तेरे हाथों में आ गए और तूने उसे पीट डाला । बस, तू उतने से ही अपने को शेर समझने लगा । मल्ली भी कोई जनानी नहीं है कि हाथों में मेहँदी लगा के या चूड़ियाँ

पहन के बैठा रहेगा। वह तब मनो-माजरा में ही था और उसने लोगों की सारी चीजें लूट लीं। वह अब भी मनो-माजरा में ही है। जब तुम वहाँ पहुँचोगे तो मिलेगा वह तुम्हें!"

"मेरा नाम सुनते ही वह गीदड़ की नाईं भाग खड़ा होगा।"

"उसके साथ उसके गिरोह के लोग भी हैं। और भी बहुत सारे लोग उसके साथ हैं, सब बंदूकों और पिस्तौलोंवाले। अपनी जान प्यारी हो तो अकल से काम लेना।"

जग्गा ने अपना सिर हिलाया, "अच्छा, इंस्पेक्टर साहिब, फिर मिलेंगे। तब पूछना मुझसे मल्ली के बारे में।" उसका गुस्सा काबू से बाहर होता दीख रहा था, "उसके चूतड़ों में थूकूँ ना तो मेरा नाम जगत सिंह नहीं।" इस बार जगत सिंह ने अपने हाथ पर ही थूक दिया और जाँघ से उसे पोंछ डाला। गुस्से में तमतमाता, छाती फुलाता हुआ वह कहने लगा, "अगर पुलिस की वर्दी में आपके सिपाहियों ने मुझे न पकड़ा होता तो मैं भी देखता कि कौन माई का लाल इस जगत सिंह के सामने पलक भी झपका सकता था।"

"अच्छा, अच्छा, सरदार जगत सिंह। मान लिया कि तू बड़ा बहादुर आदमी है। चल तू अगर सोचता है तो मान लेते हैं", सब-इंस्पेक्टर मुस्कुराया, "शाम से पहले ही घर पहुँच जा। बाबू साहिब को भी साथ लेते जाना। बाबू साहिब, आपके लिए डर की कोई बात नहीं। आपका ख्याल रखने के लिए जिले का सबसे बहादुर आदमी आपके साथ है।"

जगत सिंह सब-इंस्पेक्टर के कटाक्ष का जवाब देने की सोच ही रहा था कि एक सिपाही ने आकर खबर दी कि वह ताँगा ले आया है।

"सत श्री अकाल, इंस्पेक्टर साहिब, जब मल्ली मेरे खिलाफ रिपोर्ट लिखवाने के वास्ते आपके पास रोता हुआ आएगा, तब आप समझ जाओगे कि जग्गा सिर्फ बातों का ही राजा नहीं है।"

सब-इंस्पेक्टर हँसा, "सत श्री अकाल, जगत सिंह, सत श्री अकाल, इकबाल सिंह।"

ताँगा चंदन नगर से दोपहर को चला था। रास्ता लंबा था, पर सफर बिना किसी गड़बड़ी के ठीक कट गया। इस बार जग्गा सिपाही और

कोचवान के साथ आगे बैठा था और इकबाल पीछे। बातें करने की इच्छा किसी को भी नहीं हो रही थी। ताँगेवाले भोला को पुलिस ने ऐसे वक्त पर काम में लगाया था जब घर से बाहर निकलना भी खतरे से खाली नहीं था। अपना गुस्सा भोला अपने मरियल से घोड़े पर निकाल रहा था, उसे चाबुक मार- मारकर और गालियाँ दे- देकर ! जग्गा सहित सभी अपने अपने ख्यालों में खोए बैठे थे।

रास्ते का माहौल खामोशी भरा था। चारों तरफ पानी ही पानी भरा पड़ा था और खेत- मैदान सब बिल्कुल सपाट दिख रहे थे। खेतों में न कोई मर्द काम कर रहा था न कोई औरत। यहाँ तक कि कोई जानवर तक नहीं चर रहा था। जिन दो गाँवों से होकर वे गुजरे थे, कुत्तों को छोड़कर, वे पूरी तरह सुनसान पड़े थे। बीच में एकाध बार दीवारों के पीछे से या किसी कोने से झाँकते किसी व्यक्ति की झलक- भर मिलती और हर ऐसे व्यक्ति के हाथ में भाला या बंदूक होती।

इकबाल को अहसास हो चला था कि जग्गा और सिख सिपाही के साथ होने के कारण उसे रोककर पूछताछ नहीं की जा रही थी। उसका जी हो रहा था कि ऐसी जगह से कहीं भाग जाए, जहाँ जान बचाने के लिए उसे अपने सिख होने का प्रमाण देना जरूरी हो रहा था। मनो- माजरा से अपना सामान उठाकर वह पहली ही गाड़ी से यहाँ से निकल जाएगा। उसे ख्याल आया कि पता नहीं गाड़ियाँ चल भी रही होंगी या नहीं। और अगर चल भी रही हों तो क्या उनमें सफर करना खतरे से खाली था ? उसने अपने आपको कोसा कि क्यों उसका नाम 'इकबाल' था, क्यों उसकी ···! हिंदुस्तान को छोड़कर दुनिया में कौन- सी ऐसी जगह थी जहाँ आदमी की जिंदगी इस बात पर निर्भर करती हो कि उसकी सुन्नत हुई थी या नहीं ? यह बात दुखद नहीं तो हास्यास्पद अवश्य ही थी। उसे पता नहीं कितने दिन मनो- माजरा में ही रहना पड़ेगा और अपने बचाव के लिए मीत सिंह के ही साथ रहना पड़ेगा—उसी अस्त- व्यस्त मीत सिंह के साथ जो पाखाने के लिए दिन में दो बार मैदान जाता था। सोचते ही उसे घिन हो आती। काश, वह यहाँ से निकलकर दिल्ली पहुँच जाता—वापस सभ्यता के बीच। जाते ही वह अखबारों को अपनी गिरफ्तारी के बारे में बताएगा। अपनी पार्टी का अखबार तो मुखपृष्ठ पर उसकी फोटो समेत इस

खबर को सुर्खियों में छापेगा—अव्यवस्था पैदा करने के लिए आंग्ल- अमरीकन पूँजीवादी षड्यंत्र । कामरेड इकबाल की सीमा पर गिरफ्तारी । इसके छपते ही उसके नेता बनाए जाने में कोई संदेह नहीं रह जाता था ।

जग्गा की सबसे बड़ी फिक्र थी—नूराँ ! उसने न तो अपने साथ ताँगे में बैठे लोगों की ओर देखा, न ही रास्ते में पड़ते गाँवों को । यहाँ तक कि वह मल्ली को भी भूल गया था । उसके मन में रह- रहकर यही सोच जागती थी कि नूराँ मनो- माजरा में ही हो । इमामबख्श को किसने जाने दिया होगा । अगर अन्य मुसलमानों के साथ वह चला भी गया होगा तो भी नूराँ नहीं गई होगी । हाँ, कहीं बेबे ने ही उसे वापस न भगा दिया हो ? अगर उसने ऐसा किया होगा तो उसे भी पता चलेगा । वह घर छोड़कर चला जाएगा और लौटकर उसके पास वापस नहीं आएगा । तब जिंदगी के बाकी दिन बैठी रोती- पछताती रहे ।

जग्गा अपने ख्यालों में खोया था, कभी गुस्से से तमतमाता, तो कभी फिक्र में डूबा । ताँगा धीमी गति से गली में घुसकर गुरुद्वारे की ओर बढ़ रहा था । ताँगे के रुकने से पहले ही जग्गा कूदकर नीचे उतरा और बिना किसी से विदा लिए अँधेरे में विलीन हो गया ।

इकबाल ने ताँगे से उतरकर जँभाई ली । सिपाही और ताँगेवाले में आपस में धीमे स्वर में कोई गुप्त मशविरा हुआ । "बाबू साहिब, आपको अब मेरी कुछ और जरूरत है ?" सिपाही ने पूछा ।

"नहीं, नहीं, शुक्रिया ! मैं बिल्कुल आराम से हूँ । बहुत- बहुत मेहरबानी आपकी !" इकबाल गुरुद्वारे में अकेला ही दाखिल होना नहीं चाह रहा था पर संकोच के मारे वह सिपाही या ताँगेवाले को अपने साथ भीतर चलने के लिए नहीं कह पा रहा था ।

"बाबू जी, हमें वापसी का लंबा सफर तय करना है । मेरा घोड़ा सवेरे से खाए- पीए बगैर दौड़ रहा है और आपको तो मालूम है कि हालात कैसे चल रहे हैं !"

"अच्छा, तुम चले जाओ । शुक्रिया ! सत श्री अकाल !"

"सत श्री अकाल !"

गुरुद्वारे के प्रांगण में जगह- जगह लालटेनों की लौ के वृत्त बने हुए थे

और औरतें तुरत-फुरत बनाए कामचलाऊ चूल्हों पर रोटियाँ सेंक रही थीं। बाबा जी (गुरु ग्रंथ साहिब) वाले कमरे में लोग मीत सिंह को घेरे बैठे थे। वह शाम का गुरुवाणी का पाठ कर रहा था। जिस कमरे में इकबाल का सामान पड़ा था, उसमें ताला लगा हुआ था। इकबाल अपने जूते खोल, सिर पर रूमाल रखकर लोगों के बीच आ बैठा। कुछ लोगों ने खिसककर उसके लिए जगह बनाई। इकबाल ने लक्ष्य किया कि लोग उसकी ओर देख-देखकर फुसफुसाहटों में बतियाने लगे थे। उनमें से ज्यादातर लोग बड़ी उम्र के थे जो पहनावे से शहरी लग रहे थे। पाठ खत्म हुआ तो मीत सिंह ने बृहदाकार गुरु ग्रंथ साहिब जी को शनील के रूमाले में लपेट पालकी पर रख रात-भर के लिए संतोख (सुला) दिया और लोगों के इकबाल से कुछ पूछने के पहले ही उससे बातें करने लगा, " सत श्री अकाल, इकबाल सिंह जी ! बड़ी खुशी हुई आप वापस आ गए हैं। आपको भूख लगी होगी ?"

इकबाल समझ गया कि मीत सिंह ने जान-बूझकर उसका पूरा नाम लिया था। उसने पाया कि इससे लोगों में फैला तनाव कम हो गया था। संगत में से कुछ लोगों ने उसकी ओर मुड़कर 'सत श्री अकाल' कहा।

"सत श्री अकाल", इकबाल ने जवाब दिया और मीत सिंह के पास जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

"सरदार इकबाल सिंह', मीत सिंह ने लोगों से उसका परिचय करवाते हुए कहा, "एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं। कई सालों तक इंग्लैंड में रहकर आए हैं।"

कई दर्जन प्रशंसक आँखें इकबाल की ओर उठीं, "इंग्लैंड रिटर्नड !" उन्होंने फिर से 'सत श्री अकाल' कहा। इकबाल को अटपटा-सा महसूस होने लगा था।

"आप सिख हो, इकबाल सिंह जी ?" एक ने पूछा।

"जी हाँ" पखवाड़े-भर पहले अगर किसी ने यही सवाल उससे पूछा होता तो इकबाल ने जोर देकर कहा होता, 'नहीं' या कहता, 'मेरा कोई धर्म नहीं है', या फिर कहता, 'धर्म मेरे लिए कोई मायने नहीं रखता।' पर अब हालात फर्क थे। और फिर यह भी तो सच था कि वह सिखों के घर पैदा हुआ था।

"आपने इंग्लैंड में ही अपने केश कटाए होंगे ?" उसी आदमी ने फिर

पूछा ।

"नहीं जी," इकबाल ने घबराकर कहा, मैंने तो कभी लंबे केश रखे ही नहीं । मैं सिख हूँ पर दाढ़ी- केश तो मैंने कभी रखे ही नहीं ।"

"तुम्हारे माँ- बाप आजाद ख्यालों के लोग होंगे ?" मीत सिंह ने उसके बचाव में आते हुए कहा । मीत सिंह की बात से लोगों की शंका तो शांत हो गई पर इकबाल की अंतरात्मा पर बेचैनी छाने लगी ।

मीत सिंह ने अपने कच्छे के नाड़े से लटका चाबियों का गुच्छा निकाला और गुरुग्रंथ साहिब के पास पड़ी लालटेन उठा ली । अहाते से होता हुआ वह इकबाल को उसके कमरे तक ले गया ।

"मैंने आपका सामान कमरे में बंद कर रखा था । अब आप ले लो । मैं आपके वास्ते कुछ खाने को लाता हूँ ।"

"नहीं, भाई जी, आप खाने- पीने की फिक्र मत करो । आप तो यह बताओ कि मेरे जाने के बाद गाँव में क्या हो गया है ? ये सब लोग जो गुरुद्वारे में बैठे हैं, कौन हैं ?"

भाई ने दरवाजे का ताला खोलकर भीतर आले में एक दीयाबत्ती जला दी । इकबाल ने अपना किटबैग खोला और चारपाई पर ढेरी कर लिया । छुरियाँ, काँटे, चम्मच और कप- प्लेटों के अलावा तांबई और सुनहरी रंग के डिब्बाबंद मछलियों, पनीर और मक्खन के टिन खटिया पर बिखर गए ।

"भाई जी, गाँव में मेरे पीछे क्या होता रहा ?"

"पूछते हो क्या हुआ ? अरे पूछो कि क्या नहीं हुआ ? मनो- माजरा में लाशों की भरी गाड़ियाँ उतरीं । एक गाड़ी की लाशों को हमने जलाया, दूसरी की लाशों को दफनाया । नदी में लाशों की बाढ़ आई । उसके बाद मुसलमानों को यहाँ से निकाला गया और उनकी जगह पाकिस्तान से लौटे रिफ्यूजी आए । और भी कुछ जानना चाहते हो ?"

इकबाल ने सेलुलाइड की एक प्लेट और गिलास को अपने रूमाल से पोंछा । फिर अपने चाँदी के हिपफ्लास्क को निकालकर हिलाया । हाँ, भरा हुआ था ।

"इस बोतल में क्या है ?"

"ओह, यह ? दवाई है दवाई !" इकबाल ने हकलाते हुए कहा, "इससे

मुझे भूख लगती है !" मुस्कराते हुए फिर उसने जोड़ा।

"और फिर इसको पचाने के लिए गोलियाँ खाते हो !"

इकबाल हँस पड़ा, "हाँ !" फिर बोला, "अच्छा बताओ कि क्या गाँव में कोई मारकाट की वारदातें भी हुईं ?"

"नहीं", भाई ने अनौपचारिकता से कहा। वह इकबाल को गद्दे में हवा भरते देखने में व्यस्त था, "लेकिन अब होंगी···इस पर सोने में तो बड़ा मजा आता होगा ? इंग्लैंड में लोग इसी पर सोते हैं क्या ?"

"आपका क्या मतलब है ? यहाँ मार-काट होगी ?" इकबाल ने हवा भरने के बाद गद्दे के छिद्र में प्लग लगाते हुए पूछा, "मुसलमान तो यहाँ से जा चुके हैं। ठीक है न ?"

"हाँ, पर लोग आज रात पुल पर से गुजरनेवाली गाड़ी पर हमला बोलने जा रहे हैं। इसमें चंदन नगर और मनो-माजरा के मुसलमानों को पाकिस्तान भेजा जा रहा है ···आपके तकिए में भी हवा भर गई ?"

"हाँ ! ···कौन लोग हमला बोलेंगे ? गाँववाले तो नहीं ?"

"मैं सभी को तो नहीं जानता। कुछ लोग वर्दियाँ पहने मिलिट्री की मोटरों में आए थे। उनके पास पिस्तौलें और बंदूकें थीं। रिफ्यूजी भी उनके साथ मिल गए। डकैत मल्ली और उसका गिरोह और गाँव के भी कुछ लोग उनका साथ दे रहे हैं।" मीत सिंह ने गद्दे को थपथपाते हुए पूछा, "अगर कोई मोटा आदमी इस पर लेट जाए तो यह फट नहीं जाएगा ?"

"अच्छा, तो यह बात है !" इकबाल ने मीत सिंह की जिज्ञासा की उपेक्षा करते हुए कहा, "मुझे अब सारी चाल समझ में आ गई है। इसीलिए पुलिस ने मल्ली को छोड़ा। अब, मेरा ख्याल है जग्गा भी उनके साथ लग जाएगा। यह सब पहले से ही सोच-समझकर तय कर लिया गया होगा।"

गद्दे पर लेटकर उसने तकिए को अपनी बगल के नीचे दबा लिया, "भाई जी, आप इनको क्यों नहीं रोकते ? आपकी बात तो ये सुनते हैं।"

गद्दे को हाथ से सहलाता मीत सिंह फर्श पर बैठ गया।

"बुड्ढे भाई की कौन सुनता है ? बुरे दिन आए हुए हैं, इकबाल सिंह जी, बहुत बुरे दिन। किसी का कोई धर्म-ईमान नहीं रह गया है। अब तो आदमी बस यही कर सकता है कि तूफान के गुजर जाने तक किसी निरापद

कोने में पड़ा रहे !"

इकबाल उत्तेजित हो उठा था, "ऐसा नहीं होने दिया जा सकता ।" आपने उनको कहा नहीं कि ट्रेन पर जानेवाले लोग वही हैं जिन्हें कभी वे चचा, चची, भाई या बहन कहकर पुकारा करते थे ?"

मीत सिंह ने आह भरी और आँखों के आँसू कंधे पर लटके साफे से पोंछ लिए ।

"मेरे कहने से उन पर क्या असर पड़ना है । वे जानते हैं कि वे क्या करने जा रहे हैं । उन्हें मार-काट करनी है । अगर सफल हो जाते हैं तो गुरुद्वारे में शुक्रिया अदा करने आएँगे । अपने पापों को धोने के वास्ते चढ़ावा भी चढ़ा जाएँगे । इकबाल सिंह जी, आप अपने बारे में बताओ । आप ठीक-ठाक रहे ? थाने में आपके साथ उन्होंने कैसा सलूक किया ? ठीक-ठाक ?"

"हाँ, हाँ, मैं ठीक-ठाक रहा," इकबाल ने अधीरता से बात काटी, "आप कुछ करते क्यों नहीं ? आपको कुछ तो जरूर करना चाहिए ।"

"मैं जो कर सकता था, मैंने कर लिया । मेरा फर्ज है लोगों को बताना कि क्या सही है, क्या गलत । अगर उन्होंने खुराफात ही करने की धुन लगा रखी हो तो मैं कर ही क्या सकता हूँ, सिवाय परमात्मा से उनकी तरफ से माफी माँगने के । मैं सिर्फ प्रार्थना कर सकता हूँ, बाकी तो पुलिस और मजिस्ट्रेट पर मुनहसर करता है या फिर आप पर !"

"मुझ पर ? मुझ पर, कैसे ?" इकबाल ने अनजान-सा बनते हुए हैरान होकर पूछा, "मेरा इससे क्या वास्ता है ? मैं तो उन लोगों को जानता तक नहीं । किसी परदेसी की बात वे भला क्यों सुनने लगे ?"

"जब आप आए थे तो उनको कुछ कहना चाहते थे न ! अब क्यों नहीं कहते ?"

इकबाल फिक्र में पड़ गया, "भाई जी, जब लोग भाले और बंदूकें लेकर आते हैं तो उनको जवाब सिर्फ भालों और बंदूकों से ही देना होता है । अगर आप वैसा नहीं कर सकते तो बेहतर है उनके सामने ही न पड़ें ।"

"यही तो मैं भी कहना चाहता हूँ । मैंने तो सोचा कि आप विदेशों से पढ़े-लिखे हैं, आप कोई और ही उपाय सुझाएँगे । मैं आपके लिए पालक

का गरमागरम साग लाता हूँ।" मीत सिंह ने उठते-उठते कहा।

"नहीं, नहीं, भाई जी, मेरे इन डिब्बों में सबकुछ है। अगर कुछ चाहिए होगा तो मैं खुद आपसे आकर माँग लूँगा। खाने से पहले मुझे कुछ काम करना है।"

मीत सिंह ने लालटेन को बिस्तर के पास एक तिपाई पर रख दिया और स्वयं बाहर निकल गया।

इकबाल ने अपनी प्लेटें, काँटे, चम्मच, छुरियाँ, और टिन वापस झोले में डाल लिए। उसे अपने भीतर एक ज्वार-सा उमड़ता मालूम हुआ। ऐसा ज्वार जो अपने प्यार का इजहार करते वक्त इंसान को महसूस होता है। किसी न किसी इजहार का वक्त तो आ ही गया था, पर इकबाल को यही समझ में नहीं आ रहा था कि किस तरह का इजहार उसे करना था।

क्या वह बाहर निकलकर भीड़ का मुकाबला करते हुए उन्हें साफ-साफ शब्दों में कहे कि जो वे करने जा रहे थे वह सब गलत था, बिल्कुल अनैतिक? हथियारों से लैस भीड़ की आँखों में आँखें डाले बिना कतराए, बिना मुड़े, सीधा उन तक चला जाए, कैमरे की आँख के सामने चलते, सिनेमा के पर्दे पर बड़े पर बड़ा होते दिखते नायक की तरह? फिर उनके लात-मुक्के के प्रहारों से अथवा बंदूकों की गोलियों की बौछारों से घायल होकर बड़ी गरिमा के साथ धराशायी हो जाए?

एक सर्द-सी सिहरन इकबाल की रीढ़ से होती हुई गुजर गई।

अगर वह ऐसा करे भी, तो उसके महान बलिदान को देखनेवाला कौन होगा? भीड़ उसको भी वैसे ही मार डालेगी जैसे औरों को मारती है। उनकी नजरों में तो वह निष्पक्ष नहीं था। वे उसे नंगा करके देखेंगे। खतना हुआ है, तो बस मुसलमान ही होगा।

एक जिंदगी की बर्बादी के सिवा यह और कुछ नहीं होगा। और इससे भला मिलना-मिलाना भी क्या है? इनसानों की कुछ अवमानवीय जातियाँ अपने ही जैसे इनसानों का संहार करने जा रही हैं। होगा क्या? हर साल जनसंख्या में होनेवाली चालीस लाख की बढ़ोतरी में थोड़ी-सी कमी ही तो! ऐसा भी नहीं हो सकता था कि आप छाँट-छाँटकर अच्छे लोगों को बचा लें

और बुरों को मरने दें। और फिर उधरवाले क्या मौका मिलने से वही नहीं करेंगे ? दरअसल वे तो कर ही रहे हैं, नदी के उस पार, थोड़ी ही दूर। अव्यवस्था की ऐसी स्थिति में अपने आपको बचाना ही व्यक्ति का परम कर्तव्य हो जाता है।

हिप-फ्लास्क का ढक्कन खोलकर इकबाल ने व्हिस्की का एक बड़ा-सा पेग भरा और बिना पानी मिलाए गटागट पी गया।

गोलियाँ चल रही हों और आप अपना सिर आगे कर दें और मारे जाएँ। क्या तुक है भला इसमें ? गोली का कोई धर्म-ईमान नहीं होता। यह लगने से पहले अच्छे या बुरे की, नामी या नकारे की पहचान नहीं करती। अगर आत्म-बलिदान को सिनेमा के पर्दे पर दिखाई जानेवाली फिल्मों की तरह लोगों को दिखाया जा सकता तो भी कोई बात होती; लोगों को कोई नैतिक संदेश तो पहुँचता। लेकिन होगा दरअसल यह कि अगर वह भीड़ के सामने पहुँच गया तो बस, दूसरे दिन सवेरे बाकी हजारो लाशों के बीच एक उसकी भी लाश मिलेगी, बिल्कुल उन्हीं की तरह दिखती, कटे हुए केश, मुन्नी हुई दाढ़ी और यहाँ तक कि उन्हीं कि तरह सुन्नत भी ···कौन कहेगा कि तुम कत्लेआम के शिकार मुसलमानों में से एक नहीं ? यह कौन जान पाएगा कि तुम एक सिख हो, जो परिणाम को जानते हुए भी गोलियाँ दागते दस्ते के सामने यह प्रमाणित करने चल पड़ा था कि बुराई पर बुराई की नहीं, बल्कि अच्छाई की विजय होनी चाहिए। और ईश्वर ···न न, ईश्वर की बात इसमें कहाँ से आ गई। ईश्वर की बात तो यहाँ बिल्कुल अप्रासंगिक होगी।

इकबाल ने एक पेग और भरा। लगा, अब उसका मस्तिष्क अधिक सुस्पष्ट होने लगा था।

उसने सोचा, असली अभिप्राय तो यह होना चाहिए कि बलिदान किस कोण से किया जा रहा है। और अभिप्राय के लिए केवल यही जरूरी नहीं कि चीज आंतरिक रूप से अच्छी हो; उसकी अच्छाई का सर्वविदित होना भी जरूरी है। केवल यही आवश्यक नहीं कि कोई मन ही मन यही सोचता रहे कि वह सही है क्योंकि इसका संतोष तो शायद उसे मरणोपरांत ही मिल पाए। इसकी तुलना इस बात से नहीं की जा सकती कि बचपन में किसी मित्र को बचाने के

लिए उसकी गलती की सजा आपने भुगती हो, क्योंकि इसमें तो ऐसा करने से मन को केवल तसल्ली ही नहीं मिलती, बल्कि आदमी इस कुर्बानी का लुत्फ उठाने के लिए जिंदा भी होता है। पर जिस कुर्बानी की वह सोच रहा था उसमें जान गँवाकर भी समाज का कोई भला नहीं होनेवाला था; समाज को तो पता भी नहीं चलनेवाला था। खुद उसका भला भी क्या होना था ? खुद को तो मर ही जाना था। लेकिन परदे पर उभरती उस आकृति को देखो जिसके सामने हजारों आतुर और उत्तेजित लोग उसे सुनने के लिए बैठे हैं। वे बेचैनी से उससे सबक सीखने को उत्सुक हुए बैठे हैं। यही मूल प्रश्न है, दाता को तभी कुछ देना चाहिए, जब प्राप्तकर्ता लेने के लिए झोली फैलाए बैठा हो। नहीं तो देने का कोई मतलब ही नहीं बनता।

उसने गिलास को फिर भरा। अब तो सारी बातें और अधिक साफ होने लगी थीं।

अगर आप सचमुच यह सोचने लगे हो कि स्थिति इतनी गलीज हो गई है कि आपका पहला कर्तव्य विनाश ही बनने जा रहा है तो फिर स्लेट का सबकुछ मिटाकर साफ कर लीजिए—तब विनाश के छोटे-छोटे कृत्य करने से आपको नहीं घबराना चाहिए। और तब आपका फर्ज बन जाता है कि आप ध्वंसात्मक तत्वों के साथ गुप्त समझौते कर लें, न कि उनकी ओर नैतिकता के ऐसे होज़पाइप फेंकें कि स्वार्थ, असहिष्णुता, लोभ, फूट और चापलूसी आदि की गंदगी को बहाने के चक्कर में ऐसी भारी अव्यवस्था पैदा हो जाए कि बात खून-खराबे तक आ पहुँचे।

हिंदुस्तान को छल-कपट के कब्ज की बीमारी है। धर्म को ही लें। हिंदुओं के लिए धर्म का मतलब जाति-पाँति और गोरक्षा के सिवा और क्या है ? मुसलमान के लिए सुन्नत और शुद्ध मांस के सिवा इसके क्या मायने हैं ? सिखों का धर्म से तात्पर्य है लंबे केश रखना और मुसलमानों से नफरत करना। और क्रिस्तानों के लिए ? क्रिस्तानों का धर्म ऐसे है जैसे हिंदू धर्म के सिर पर सोला टोपी लगी हो। पारसियों के लिए अग्निपूजा और अपने मृतकों को गिद्धों के हवाले करना ही धर्म का पर्याय है। सदाचार अथवा नैतिकता, जिसे किसी भी धर्म की नियम-संहिता का सार होना चाहिए, इन सभी धर्मों द्वारा बड़े आराम से ताक पर धर दी गई हैं। चलिए, दर्शनशास्त्र को ले लीजिए, जिसको लेकर

दुनिया-भर का हो-हल्ला मचा है—रहस्यवाद की नकाबपोशी में छिपी भ्रष्टबुद्धिता के सिवा यह क्या है भला ? और योग ? खासकर वह योग जो अंधाधुंध डालरों की कमाई करनेवाला एक धंधा बना हुआ है ? शीर्षासन—यानी सिर के बल खड़े हो जाओ। पद्मासन—यानी पैर मोड़कर एक खास मुद्रा में बैठो और सिर को झुकाकर नाक से अपनी नाभि में गुदगुदी करो। अपनी इंद्रियों को पूरी तरह वश में कर लो और औरतों को तब तक संतुष्ट करते रहो जब तक कि वे चिल्लाने न लगें कि 'अब बस' और आप फिर भी आँखें बंद किए-किए ही कह सकें 'नेक्स्ट प्लीज़'। और दुनिया-भर के अवतारों की निरर्थक पूजा का भी क्या करें ? आदमी को एक के बाद एक चौरासी लाख योनियों में जन्म लेना पड़ता है; कभी साँड़ का, तो कभी बंदर का, तो कभी कीड़े का। पूछा कि प्रमाण क्या है इसका, तो कहेंगे—हम लोग ऐसी बेकार की बातों में अपना समय व्यर्थ नहीं बर्बाद करते ! यह सब पश्चिम में ही होता होगा ! हम तो रहस्यमय पूरब के वासी हैं ! हम प्रमाणों में विश्वास नहीं करते, हमारा विश्वास तो केवल श्रद्धा में है, आस्था में है। हम तर्क नहीं करते, केवल निष्ठा रखते हैं। चिंतन, जो कि किसी भी दर्शन-संहिता की एक अनिवार्य शर्त होता है, हम इसके बिना ही काम चला सकते हैं। कल्पना की उड़ानें भरकर ही हम उदात्त ऊँचाइयों पर पहुँच जाते हैं। सक्रिय जीवन के सभी क्षेत्रों में हमें 'सीढ़ियों के सहारे' वाली चालें चलने में निपुणता प्राप्त है। जब तक दुनिया बिना किसी संदेह के हमारे आकाश तक सीढ़ी लगाने की योग्यता पर विश्वास करती रहेगी और छोटे से छोटा बच्चा भी इसका सहारा लेकर दृष्टि से ओझल होने तक ऊपर चढ़ता रहेगा, तब तक हमारी किस्म का यह छल-कपट फलता-फूलता रहेगा।

कला और संगीत को ही लें। समकालीन भारतीय चित्रकला, संगीत, वास्तुकला और मूर्तिकला क्यों इतनी असफल मानी जाती है ? क्योंकि हम अतीत में ही भटकते रहते हैं। अतीत के पुनरावर्तन में कोई हर्ज नहीं, बशर्ते यह हमारे पैरों में बँधे पत्थर की तरह का एक पैटर्न न बन जाए। अगर ऐसा ही होता रहा तो हम कला-विधाओं के क्षेत्र में बंद गलियों तक पहुँचने से नहीं बच सकते। अनाकर्षक चीजों की व्याख्या हम उन्हें गूढ़ और रहस्यमय बतलाकर करते हैं। और अगर इनसे विलग

होते हैं तो फिर पूरी तरह ही कट जाते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय फिल्मों के आधुनिक संगीत को ही ले लीजिए। पश्चिम की निरी नकल— हवाइयन गिटारों, वायलिनों, एकार्डियनों और सुषिर वाद्यों की ताल पर बजते टैंगो, रंबा या संबा ही तो है सब ! एकदम वाहियात, फूहड़ ! फिल्मों से अगर शास्त्रीय संगीत को समाप्त कर दिया गया है तो इसको भी हटा देना चाहिए।

अपने ही विचार इकबाल को गड्ड-मड्ड होते लगने लगे थे। उसने थोड़ी और व्हिस्की गिलास में उँडेली।

बुराई के बारे में सजग होना अच्छाई के परिवर्धन की एक अनिवार्य शर्त है। पहले तल्ले की कच्ची दीवारों पर दूसरी मंजिल उठाने का कोई तुक नहीं। बेहतरी इसी में है कि उसे गिरा दिया जाए। अगर एक समाज विशेष और उसके निर्धारित नियमों में आपका विश्वास न हो, तो अनिच्छा से उसके सामने झुकना कायरता भी है और दुस्साहस भी। उनकी मजबूती आपकी कायरता सिद्ध होती है और उनकी कायरता आपका साहस बढ़ाती है। ये सब केवल नाम-तंत्र की बातें हैं। कोई कह सकता है कि कायर बनने के लिए भी आदमी में हिम्मत होनी चाहिए। निश्चय ही यह एक पहेली है, पर यह सचमुच एक उद्धरणीय पहेली है। चाहो तो बेशक इसे कहीं दर्ज कर रखो।

और एक व्हिस्की लो न ! व्हिस्की तो पानी जैसी होती है। इसमें कोई स्वाद नहीं। इकबाल ने फ्लास्क को हिलाकर देखा थोड़ी-सी बाकी बची थी। थैंक गॉड, चलो खत्म तो नहीं हुई।

उसने अपने आप से कहा—अगर आप चीजों को ज्यों का त्यों देखें तो आप पाएँगे कि न तो इनसान के लिए और न ही भगवान के संबंध में कोई निश्चित नियम-संहिता कहीं मौजूद है जिस पर हम अंपने चरित्र-निर्माण को निर्धारित कर सकें। अच्छाई पर बुराई की भी उतनी ही विजय होती देखी गई है जितनी कि बुराई पर अच्छाई की। कभी-कभी तो बुराई की ही अधिक विजय होती दिखाई देती है। ऐसी परिस्थितियों में मूल्यों के प्रति पूर्ण उदासीनता दिखाने के सिवाय आप और कर ही क्या सकते हैं ! कुछ भी करते रहो, कोई फर्क नहीं पड़ने का।"

गिलास हाथ में थामे-थामे ही इकबाल को नींद आ गई। उसके बगलवाली तिपाई पर लैंप अब भी जल रहा था।

गुरुद्वारे के अहाते में जलते चूल्हों की आग बुझने को थी। हवा के झोंके बीच-बीच में बुझते हुए अंगारों को फिर से हवा दे जाते। लालटेनों की बत्तियाँ मंद कर दी गई थीं। आदमी, औरतें और बच्चे बाबाजी वाले कमरे में पसरकर सो रहे थे। मीत सिंह जाग चुका था और चारों तरफ फैली अस्त-व्यस्तता को ठीक-ठाक करता हुआ झाड़ू लगा रहा था।

तभी किसी ने फाटक पर मुक्कों से खटखट करनी शुरू की। मीत सिंह बुहारना छोड़कर 'कौन है?' करता फाटक पर आया। कुंडी खोली तो देखा, जगत सिंह था। अँधेरे में वह और भी विशालकाय लग रहा था। उसके आकार ने पूरा दरवाजा ही रोक रखा था।

"क्यों, जगत सिंह जी, इस वक्त इस तरफ कैसे आना हुआ?" मीत सिंह ने पूछा।

"भाई", उसने फुसफुसाहटों में कहा, "मुझे गुरु का आशीर्वाद चाहिए। आप गुरुग्रंथ साहिब से कुछेक लाइनें पढ़कर मुझे सुना दोगे?"

"मैंने तो गुरुग्रंथ साहिब को रात के लिए संतोख दिया है", मीत सिंह ने कहा, "क्या काम है तुमको ऐसा जो ···?"

"काम-कूम से तो कोई मतलब नहीं", जग्गा ने अधीरता से मीत सिंह के कंधे पर अपना भारी-भरकम हाथ रखते हुए कहा, "दो-चार लाइनें जल्दी से पढ़कर सुना दो ना ···!"

मीत सिंह बुड़बुड़ाता हुआ उसको भीतर ले गया। बोला, "ऐसे तो तुम कभी गुरुद्वारे में फटके भी नहीं, और अब जबकि बाबा जी आराम कर रहे हैं तो तुम मुझसे गुरुवाणी सुनना चाहते हो! यह तो ठीक बात नहीं है। मैं तुमको 'जपजी' (सुबह की प्रार्थना) में से ही थोड़ा कुछ सुना देता हूँ।"

"चलो, कोई बात नहीं। कुछ भी सुना दो।"

मीत सिंह ने लालटेन की बत्ती ऊँची की। उसकी धुएँ से भरी चिमनी से रोशनी फूटने लगी। वह गुरुग्रंथ साहिब की पालकी के पास बैठ गया। जग्गा ने पालकी के नीचे से चँवर को निकालकर मीत सिंह के ऊपर डोलना

शुरू किया। मीत सिंह ने एक छोटी-सी प्रार्थना की किताब निकाली और अपने माथे से लगाई। फिर जो भी पन्ना खुल गया, वहीं से पढ़ना शुरू कर दिया—

"राती रुत्ती थित्ती वार
पवन पानी अगनी पाताल
तिस बिच धरती थापि रखी धर्मसाल
तिस ब्रिच जीअ जुगति के रंग
तिनके नाम अनेक अनंत
कर्मी कर्मी होय विचार
सच्चा आप सचा दरबार
तित्थे सोहन पंच परवाण
कच पकाई ओत्थे पाई
नानक गया जापै जाई।"

मीत सिंह ने प्रार्थना की पुस्तक को बंद करके पुनः माथे से लगाया और 'जपजी' के उपसंहार का जाप करने लगा—

"धरत महत्त
दिवस रात दोइ दायी दाया
खेलै सकल जगत
चंगियाइयाँ बुरियाइयाँ
वाचै धरम हुदूर
करमी आपौ आपनै
के नेडै के दूर
जिन्नी नाम धयाया
गये मसक्कत घाल
नानक ते मुख उज्जलै
केती छुट्टी नाल।"

उसका स्वर धीमा होता-होता फुसफुसाहट में बदल चुका था। जगत सिंह ने चँवर अपने स्थान पर वापस रखकर फर्श पर बाबा जी के सामने मत्था टेका।

"यह जो आपने सुनाया है, अच्छा है क्या ?"

"गुरु की वाणी तो सारी ही अच्छी है।" मीत सिंह ने गंभीरता से कहा।

"जरा इसका मतलब तो समझा दो!"

"तुमको मतलब से क्या वास्ता ? मतलब तो गुरु के संदेश से होता है। अगर तुम कुछ अच्छा करने जा रहे हो तो गुरु मदद करेंगे। कुछ बुरा करने जा रहे हो तो गुरु तुम्हारे रास्ते में आ खड़े होंगे। अगर तुम फिर भी बुरे रास्ते चलते जाओगे तो फिर गुरु तुम्हें तब तक सजा देते रहेंगे जब तक पछताकर तुम माफी न माँग लो। और माफी माँगने पर वे माफ भी कर देते हैं।"

"हाँ, हाँ, मुझे मतलब से क्या लेना-देना ! ठीक है भाई जी ! सत श्री अकाल !"

जग्गा ने फिर भूमि पर अपना मत्था टेका और उठ खड़ा हुआ। सोए हुए लोगों में से रास्ता बनाते हुए वह बाहर निकला और अपने जूते पहनने लगा। एक कमरे में बत्ती जल रही थी। जग्गा ने भीतर देखा। तकिए पर लेटा बिखरे बालोंवाला सिर उसको जाना-पहचाना लग रहा था। इकबाल अपने हिप-फ्लास्क को छाती पर रखे-रखे ही सोया हुआ था।

"सत श्री अकाल, बाबू जी !" उसने धीरे से कहा। कोई जवाब नहीं मिला, "सो रहे हो क्या, बाबूजी ?"

"उनको परेशान मत करो", मीत सिंह ने फुसफुसाकर टोका, "उनकी तबियत ठीक नहीं है। दवाई लेकर सोना पड़ा है।"

"अच्छा भाई जी, मेरी तरफ से बाबू जी से 'सत श्री अकाल' कह देना।

'पुराना पापी, पुराना पापी'—बार-बार हुकुमचंद के दिमाग में यही वाक्य उमड़ता-घुमड़ता रहा। उन्होंने इसे भुलाना चाहा, पर बार-बार उन्हें यही याद आता रहा, 'पुराना पापी, पुराना पापी।' पचास से ऊपर की उम्र के शादी-शुदा आदमी के लिए ऐसे औरतों के पीछे भागना तो बुरी बात ही है। अपनी बेटी की उम्र की लड़की, और वह भी मुसलमान वेश्या, ऐसी औरत के साथ भावनात्मक लगाव होना ? निश्चय ही हास्यास्पद बात थी। लगता था अब वे सठियाने लगे थे।

उत्कर्ष-का जो भाव उनकी चेतना ने उनके भीतर सवेरे जगाया था,

अब धीरे- धीरे लुप्त होने लगा था । अब तो उनके मन में सिर्फ चिंता का भाव था, अनिश्चितता का और वृद्धावस्था के भय का । बदमाश जग्गा और सोशल वर्कर इकबाल को उन्होंने रिहा कर दिया था, बिना उनके बारे में पूरी जानकारी लिए । क्या गारंटी थी कि उन दोनों में स्थिति को बदल पाने की ताकत उनसे अधिक होगी ? कुछ वामपंथी सामाजिक कार्यकर्ता निश्चय ही बहुत निडर समझे जाते थे, लेकिन यह तो निरा बुद्धिजीवी किस्म का आदमी था, जिनको लोग अक्सर 'घर- घुस्सू' अथवा 'अव्यावहारिक' कहा करते हैं । वह और करेगा क्या ? सिर्फ लोगों की आलोचना ही तो—कि उन्होंने अपना फर्ज नहीं निभाया ? बदमाश जग्गा गाँव का बदनाम गुंडा था । उसने रेलों में डकैतियाँ, मोटरों को रोककर लूटना, डाके और कत्ल जैसे जुर्म किए हुए थे; या तो पैसे के वास्ते या फिर दुश्मनी निकालने के लिए । उससे सिर्फ यही अपेक्षा की जा सकती थी की वह मल्ली के साथ अपना हिसाब बराबर करने की कोशिश करेगा । अगर कहीं जग्गा के छूटने की ख़बर सुनकर मल्ली भाग खड़ा हुआ तब तो जग्गा का सारा उत्साह ही जाता रहेगा । या फिर हो सकता है कि वह भी लोगों के साथ लूट- मार में शामिल हो जाए ! उसके जैसे लोग किसी माशूका के लिए सिर कटाने को नहीं बढ़ते । नूराँ मारी गई तो और किसी को उठा लाएगा ।

हुकुमचंद अपने कर्तव्य को लेकर भी चिंतित थे । दूसरों के कंधों पर रखकर बंदूक चलाना ही क्या काफी था ? कानून और व्यवस्था बनाए रखना मजिस्ट्रेट की जिम्मेवारी थी, पर व्यवस्था बनाए रखने के लिए सत्ता के सहारे की आवश्यकता होती है । उसका विरोध करके व्यवस्था को बनाए नहीं रखा जा सकता । और सत्ता कहाँ थी ? दिल्ली में बैठे लोग क्या कर रहे थे ? असेंबली में बैठे लंबे- चौड़े भाषण दे रहे होंगे ! लाउडस्पीकर चीख- चीखकर उनके अहम् का विस्तार कर रहे होंगे और खूबसूरत विदेशी औरतें 'विजिटर्स गैलरी' में बैठी प्रशंसक निगाहों से उन्हें देख रही होंगी : 'ही इज़ ए ग्रेट मैन, दिस मिस्टर नेहरू ऑफ योर्स ! मैं तो समझती हूँ कि नेहरू आज दुनिया के सबसे महान व्यक्ति हैं । और खूबसूरत कितने हैं ! कितनी उम्दा बात कही है आपने !''' बरसों पहले हमने नियति से मिलने का वादा किया था और अब वक्त आ गया है कि हम अपने वचन को पूरा करें, सिर्फ पूरा ही

नहीं बल्कि पूरे दिलो-जाँ से पूरे करें ।···जी हाँ, मिस्टर प्राइम मिनिस्टर, आपने मिलने का वादा किया था, पर मिलने के वादे तो और भी बहुत से लोगों ने किए थे ।···

हुकुमचंद का एक दोस्त—प्रेम सिंह अपनी घरवाली के जेवर-गहने लाने लाहौर गया था । उसने भी वहाँ के फ्लेटी होटल में किसी से मिलने का वादा कर लिया । इस होटल में अंग्रेज साहब लोग एक-दूसरे की बीवियों के साथ रंगरेलियाँ मनाया करते थे । यह होटल पंजाब असेंबली की इमारत के बिल्कुल बगल में ही है, जहाँ पाकिस्तानी सांसद कानून बनाते हैं और प्रजातंत्र की बातें करते हैं । प्रेम सिंह बीयर पी-पीकर इंतजार की घड़ियाँ गुजार रहा था और होटल में ठहरे अंग्रेजों को भी पेश कर रहा था । सदाबहार झाड़ियों की हेज़ के पीछे तुर्की टोपियाँ और पठानी पगड़ियाँ पहने दर्जन-भर सिर उसकी तरफ ताक लगाए छिपकर खड़े थे । प्रेम सिंह ने काफी बीयर पी ली थी और अपने अंग्रेज दोस्तों और ऑरकेस्ट्रा के लोगों को भी वह खूब पिलाता जा रहा था । हेज़ के पीछे खड़े उसके आशिक बड़े सब्र के साथ उसका इंतज़ार करते रहे । अंग्रेजों ने जी भरकर बीयर पी और कहा कि प्रेम सिंह बहुत बढ़िया आदमी था, पर डिनर के लिए उन्हें देर हो रही थी, इसलिए उन्होंने कहा, "गुड नाइट, मिस्टर ··· क्या नाम बताया था आपने अपना ? हाँ, ऑफ कोर्स, मिस्टर सिंह । थैंक यू वेरी मच मिस्टर सिंह । फिर मिलेंगे ?"

"···खासा पियक्कड़ है । काफी चढ़ा लेता है", उन्होंने खाने के कमरे में जाकर कहा । ऑरकेस्ट्रा बजानेवालों ने भी जरूरत से ज्यादा चढ़ा ली थी । "सर, आप क्या सुनना चाहते हैं ?" मेंडोज़ा नाम के गोवानी बैंड लीडर ने कहा, "काफी देर हो चुकी है, अब हम लोग जाने ही वाले हैं ।" पाश्चात्य संगीत के बारे में प्रेम सिंह को अधिक जानकारी नहीं थी । उसने बहुत सोचा तब जाकर याद आया कि किसी अंग्रेज ने 'बनानाज़' जैसा कुछ सुनाने की फरमाइश भेजी थी । बनानाज़ ? आज तो हमारे यहाँ बनानाज़ नहीं मिल सकते, सर, जी हाँ !" मेंडोज़ा, डिमेलो, डिसिल्वा, डिसारम और गोम्स आदि सभी ने अनाड़ियों की

तरह बनानाज़ को केला समझ लिया था।

प्रेम सिंह लॉन को पार करके फाटक तक पहुँचा। उसके आशिक भी हेज़ के पीछे चुपके- चुपके चलते फाटक तक आ पहुँचे। बैंडवालों ने प्रेम सिंह को लड़खड़ाकर ढेर होते देखा, तो उन्होंने 'गॉडसेव द किंग' बजाना शुरू कर दिया।

हुकुमचंद के अर्दली की बेटी सुंदरी ने अपनी नियति के साथ मिलने का वादा गुजराँवाला को जाती सड़क पर किया था।

अभी उसकी शादी को चार दिन ही हुए थे। दोनों बाँहें चूड़े से भरी थीं। हथेलियों की मेहँदी का रंग अभी तक गाढ़ा कत्थई ही था। अभी वह मंसाराम के साथ सोई भी नहीं थी। उसके रिश्तेदारों ने एक पल को भी उन्हें अकेला नहीं छोड़ा था। घूँघट की ओट से बेचारी ने उसके चेहरे की एक झलक- भर देखी थी। अब वह उसे गुजराँवाला लेकर जा रहा था जहाँ उसकी चपरासी की नौकरी थी और सेशन कोर्ट के कंपाउंड में उसे एक छोटा- सा कमरा मिला हुआ था। वहाँ रिश्तेदारों का घेरा नहीं होगा। और निश्चय ही वह अपनी बीवी को ऐसे ही नहीं छोड़ेगा। लेकिन फिर भी वह उस 'भावी मिलन' के प्रति उदासीनता दर्शाता अपनी दुलहिन को छोड़ बाकी मुसाफिरों के साथ जोर- जोर से बातें कर रहा था। मर्द लोग तो दिखावे के लिए ऐसी उदासीनता दिखाते ही हैं। और रही दुलहिन की बात! तो लग रहा था कि उसे भी अपने दूल्हे की क्या चाह थी? घूँघट में ढँका चेहरा। होंठों पर एक शब्द भी नहीं। "चूड़े की एक भी चूड़ी ना निकालना। अपशगुन होता है", उसकी सहेली ने उसे कहा था, "जब वह तुझे प्यार करेगा और मसले- कुचलेगा तभी उतरें तो शगुन होता है।" कलाइयों से लेकर कोहनी तक उसने दर्जनों की संख्या में पहन रखी थीं। उसने चूड़ियों को अँगुलियों से छूकर देखा। ये तो काफी कड़ी थीं। इन्हें चटकाने के लिए तो उसे बहुत जोर से कस- कसकर उसका आलिंगन करना पड़ेगा।

बस अचानक ही झटका खाकर रुकी तो उसकी तंद्रा टूटी। सड़क पर बड़े- बड़े पत्थर पड़े थे। सैकड़ों लोगों ने उनकी बस को घेर रखा

था। सबको बस से नीचे उतरने को कहा गया। सिखों के तो देखते ही टुकड़े कर दिए गए। मोन्नो को नंगा कर- करके देखा गया। जिनकी सुन्नतें की हुई थीं, उन्हें छोड़ दिया गया। जिनकी नहीं हुई थीं, उनकी कर दी गई। सिर्फ सुन्नत ही नहीं, पूरा लिंग काट डाला गया। जिस नई- नवेली ने अपने पति की शक्ल तक ठीक से नहीं देखी थी, उसने उसे अलफ नंगा देखा। उन्होंने उसे बाँहों और टाँगों से पकड़ा और एक आदमी ने उसका लिंग काटकर दुलहिन को थमा दिया। फिर भीड़ ने दुलहिन के साथ मुँह काला किया। उसे अपनी एक भी चूड़ी नहीं उतारनी पड़ी। सारी की सारी अपने आप टूटी थीं, जब लोगों ने एक- एक कर सड़क पर पड़ी उस नई नवेली की इज्जत के साथ खेला। यह भी कैसा शगुन हुआ?

सुंदर सिंह का मामला कुछ और ही तरह का था। हुकुमचंद ने उसे सेना में भर्ती करवाने में मदद की थी। उसने काफी तरक्की की। बड़ा बहादुर सरदार था। बर्मा, इरित्रा और इटली में लड़ी लड़ाइयों में उसने ढेरों पदक जीते थे। सरकार ने उसे सिंध में मुरब्बे दिए थे। किस्मत के साथ उसका मिलन हुआ था जब वह अपनी बीवी और तीन बच्चों के साथ ट्रेन में सफर कर रहा था। चालीस जनों के बैठने और बारह जनों के सोने के लिए बनाए गए डिब्बे में करीब पाँच सौ आदमी- औरतें ठुँसे पड़े थे। कोने में एक छोटा- सा शौचालय था। सिस्टर्म में पानी भी नहीं था। जहाँ से गाड़ी गुजर रही थी उस जगह का तापमान छाया में 115° था। पर वहाँ छाया कहीं थी ही कहाँ? मीलों दूर तक एक झाड़ी भी नहीं। सिर्फ धूप और रेत! ···पानी एकदम नहीं था। हर स्टेशन पर भालों से लैस आदमी पटरियों के पास खड़े मिलते। एक स्टेशन पर आकर गाड़ी ऐसी रुकी कि चार दिन तक वहीं खड़ी रही। किसी को उतरने नहीं दिया गया। सुंदर सिंह के बच्चे 'पानी- पानी' करते रोते रहे और खाने को माँगते रहे.। यही हाल बाकियों का था। सुंदर सिंह ने उनकी प्यास बुझाने के लिए उनको अपना पेशाब तक पिलाया। फिर उसका पेशाब भी सूख गया। तब उसने अपनी पिस्तौल निकाली और उन सबको गोली

मार दी। छह साल का उसका बड़ा बेटा शंगारा सिंह, जिसके सुनहरी भूरे केश गुट्टी के आकार में सिर के ऊपर बँधे थे; मुड़ी हुई पलकोंवाली चार साल की दीपो और अपनी माँ की सूखी छातियों में मुँह गड़ाए मात्र चार महीने की अमरो, रोते-रोते जिसके मुँह पर अनगिनत सिकुड़नें पड़ गई थीं। सुंदर सिंह ने सबको गोली मार दी। अपनी घरवाली को भी। उसके बाद उसकी हिम्मत जवाब देने लगी। उसने रिवाल्वर अपनी कनपटी पर धरा, लेकिन गोली नहीं चला सका। अपने आपको मारने का कोई तुक नहीं, उसने सोचा। अपने बीवी और बच्चों की लाशों से गुजरकर वह खुद हिंदुस्तान आ गया। वह अपना वादा नहीं निभा सका, सिर्फ उसके बीवी और बच्चों ने ही निभाया।

हुकुमचंद अपने आपको बेहद लाचार महसूस कर रहे थे। रात घिर आई थी। नदी में मेंढकों की टरटराहट का शब्द उठ रहा था। बरामदे के पास लगी बेला की झाड़ियों पर जुगनू टिमटिमा रहे थे। बैरा व्हिस्की लेकर आया था, पर हुकुमचंद ने उसे वापस भेज दिया। बैरे ने उनके लिए खाना लगाया, वह भी उन्होंने नहीं खाया। कमरे के लैंप को हटवाकर वे अँधेरे में ही शून्य में ताकते बैठे रहे।

उन्होंने लड़की को चंदन नगर जाने ही क्यों दिया ? आखिर क्यों ? मुट्ठियों से अपना माथा पीटते उन्होंने खुद से ही पूछा। अगर वह यहाँ रेस्ट हाउस में उनके पास होती तो उन्हें बाकी दुनिया की चिंता करने की जरूरत ही नहीं थी। लड़की इस समय रेलगाड़ी पर होगी। गाड़ी की गड़गड़ाहट उन्हें सुनाई दे रही थी।

हुकुमचंद ने अपनी आरामकुर्सी सरकाई, बाँहों से अपना चेहरा ढँका और रोने लगे। फिर उन्होंने ऊपर आकाश की ओर देखकर प्रार्थना करनी शुरू की।

ग्यारह बजे के कुछ बाद का समय होगा। चाँद ऊपर उठ आया था, पर जैसे बेहद थका-थका-सा। मैदानी इलाके पर फैलती इसकी पीली-सी चाँदनी में सबकुछ धुँधला-धुँधला-सा दिखाई दे रहा था। पुल के

पास तो चाँदनी न के बराबर ही पड़ रही थी। रेलवे के पुल के ऊँचे पुश्तों के साए की गहरी दीवारें नीचे बिछी थीं। सिगनल के पास मशीनगनों के लिए लगाया रेत के बोरों का टीला रेल की पटरियों के दोनों तरफ बिखरा पड़ा था। सिगनल का ढाँचा मानो ऊँचे- चौड़े संतरी की तरह दृश्य की चौकसी करता खड़ा था। दो लंबी अंडाकार आँखें लाल- लाल चमक रही थीं। सिगनल के दोनों हाथ एक- दूसरे के समानांतर तने खड़े थे। नदी के किनारे के झाड़- झंखाड़ जंगलों से प्रतीत हो रहे थे। नदी के पानी में तनिक भी चमक नहीं थी। नदी स्लेटी चादर- सी सपाट फैली थी। बीच- बीच में कभी एकाध सिलवट दिख जाती।

पुश्ते से काफी दूरी पर पैंपास घास के घने झुरमुटों के पीछे खड़ी जीप का इंजन हल्की- हल्की आवाज के साथ चालू था। जीप में कोई था नहीं।

सारी रेलवे लाइन पर एक- दूसरे से कुछ- कुछ फीट की दूरी पर एक के बाद एक आदमियों को तैनात किया गया था। अपनी- अपनी रायफलें और भाले सँभाले वे कूल्हों के बल बैठे थे। पुल के लोहे के पहले बिस्ते पर, भूमि से करीब बीस फीट की ऊँचाई पर रेलवे लाइन के समानांतर एक छोर से दूसरे छोर तक एक मोटा रस्सा बाँध दिया गया था।

अँधेरे के कारण आदमियों को एक- दूसरे की पहचान नहीं हो रही थी, इसलिए वे जोर- जोर से बोलकर बातें कर रहे थे।

"खामोश, सुनो !"

उन्होंने कान लगाकर सुनने की कोशिश की। कुछ तो नहीं था। नरकटों की झाड़ियों पर हवा चल रही थी।

"फिर भी चुप करके रहो," दल के अगुआ का आदेश हुआ, "तुम लोग ऐसे बातों में लगे रहोगे तो गाड़ी की आवाज वक्त पर नहीं सुन सकोगे।"

उन्होंने अब फुसफुसाहटों में बोलना शुरू किया।

थोड़ी ही देर में एक सिगनल गिरा और स्टील की तारों के नाचने का शब्द हुआ। सिगनल की अंडाकार आँखें लाल से हरी हो गईं। फुसफुसाहट एकदम थम गई। आदमी उठे और पटरियों से दस- दस गज की दूरी पर उन्होंने अपना- अपना मोर्चा सँभाल लिया।

गाड़ी की आवाज लगातार सुनाई दे रही थी। बीच- बीच में इंजन की

'फप- फप' भी सुनाई देती। तभी एक आदमी पटरियों के पास पहुँचा और लोहे की लाइन पर अपना कान रखकर सुनने लगा।

"वापस आ, बेवकूफ !" अगुआ कर्कश स्वर में चिल्लाया।

"गाड़ी ही है !" आदमी जोश में बोला।

"वापस लौट !" अगुआ ने बौखलाकर फिर कहा।

सभी की आँखें अँधेरे में उसी ओर लगी थीं जिधर से गाड़ी की गड़गड़ाहट आ रही थी। फिर उन्होंने ऊपर रस्से की तरफ देखा—स्टील के डंडे की तरह बिल्कुल तना हुआ था। अगर ट्रेन की रफ्तार तेज हुई तो पता नहीं कितने लोग गाजर- मूलियों की तरह कट जाएँगे। सोचकर उनका कलेजा काँप उठा।

स्टेशन से काफी दूरी पर, रोशनी का एक बिंदु दिखा। वह ओझल हुआ तो फिर दूसरा, उसके ओझल होने पर फिर तीसरा, फिर चौथा और फिर एक के बाद एक ...। जैसे- जैसे ट्रेन नजदीक आती गई रोशनी के वे बिंदु एक- एक कर निकट आते दिखाई पड़ने लगे। आदमी रोशनियों की ओर देखते और फिर गाड़ी की आवाज सुनने में तल्लीन हो जाते ! पुल की तरफ वापस किसी का ध्यान गया ही नहीं।

कोई आदमी चुपके- चुपके पुल के लोहे के बिस्ते पर चढ़ रहा था। उसकी ओर लोगों का ध्यान तब पहुँचा जब वह ऊपर तक चढ़ चुका था और जहाँ पर रस्सा बँधा था। उन्होंने सोचा कि वह रस्से को देखने ऊपर गया होगा कि ठीक से बँधा है कि नहीं। वह रस्से को खींचकर देख रहा था। बड़ी मजबूती से बँधा था; अगर इंजन की चिमनी इससे टकरा भी गई तो हो सकता था बीच से कट जाए, पर गाँठें तो इतनी अच्छी तरह बँधी थीं कि वहाँ से इसके खुलने का कत्तई डर नहीं था। आदमी रस्से पर लेट गया। उसके पैर गाँठ की तरफ थे, हाथ रस्से के बीचोंबीच पहुँच रहे थे। आदमी काफी हट्टा- कट्टा लग रहा था।

गाड़ी नज़दीक आती जा रही थी। चिमनी से चिन्गारियाँ उड़ाता इंजन दानवों- सा पटरियों पर बढ़ा चला आ रहा था। गाड़ी के शोर में इसकी 'फप- फप' दबी जा रही थी। धुँधली चाँदनी में भी पूरी की पूरी गाड़ी दिखाई दे रही थी। पहले डिब्बे से लेकर आखिरी डिब्बे तक इसकी छत इनसानों

के हुजूम से पटी पड़ी थी।

आदमी अब भी रस्से पर लेटा पड़ा था।

दल के लीडर ने उठकर जोर-जोर से चिल्लाना शुरू किया, "अबे गधे, नीचे आ। मारा जाएगा। तुरंत नीचे उतर!"

आदमी ने मुड़कर आवाज की ओर देखा। फिर अपनी कमर से एक छोटी-सी कृपाण निकाल, रस्से को काटने लगा।

"कौन है यह ? क्या कर रहा है यह …?"

वक्त बिल्कुल नहीं बचा था। उनकी नज़रें गाड़ी तक जातीं, फिर गाड़ी से लौट पुल पर। आदमी जोर-जोर से रस्से को काटने में लगा था।

लीडर ने बंदूक अपने कंधे पर चढ़ाई और उसकी ओर तान दी। गोली निशाने पर लगी थी। आदमी की एक टाँग रस्से से लटकती हुई हवा में झूलने लगी। पर दूसरी अब भी रस्से के साथ उलझी हुई थी। न जाने किस उन्माद भरी तेजी के साथ वह रस्से को काटे ही जा रहा था। सीटी के हर विस्फोट के साथ अपनी चिमनी से आकाश में अंगारे उड़ाता इंजन केवल कुछ गज दूर ही रह गया था। किसी ने एक और गोली दागी। आदमी का शरीर रस्से से फिसल पड़ा, लेकिन उसने अपने हाथों और ठुड्डी से अब भी रस्से को जकड़े रखा। अपने आपको ऊपर उछाल रस्से को उसने अपनी काँख में फँसा लिया और दाएँ हाथ से पुनः उसे काटने में जुट गया। रस्सा कटकर तार-तार हो चुका था, सिर्फ एक पतली-सी लेकिन मजबूत लड़ी ही काटनी बाकी रह गई थी। वह अब भी उसको काटे जा रहा था, पहले कृपाण से, फिर अपने दाँतों से। इंजन उस पर आने ही वाला था। तभी जैसे गोलियों की एक बौछार ही उस पर हुई। वह काँपकर नीचे आ गिरा।

उसके नीचे गिरने के साथ ही रस्सा बीच से कटकर अलग हो गया। गाड़ी उसके ऊपर से गुजरती हुई पाकिस्तान चली गई।

□□□

राजकमल पेपरबैक्स

खुशवंत सिंह

पाकिस्तान मेल

भारत-विभाजन की त्रासदी पर आधारित *पाकिस्तान मेल* सुप्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार खुशवंत सिंह का अत्यंत मूल्यवान उपन्यास है। सन् 1956 में अमरीका के 'ग्रोव प्रेस एवार्ड' से सम्मानित यह उपन्यास मूलतः उस अटूट लेखकीय विश्वास का नतीजा है जिसके अनुसार अंततः मनुष्यता ही अपने बलिदानों में जीवित रहती है। घटनाक्रम की दृष्टि से देखें तो 1947 का भयावह पंजाब ! चारों ओर हजारों-हजार बेघर-बार भटकते लोगों का चीत्कार ! तन-तन पर होनेवाले बेहिसाब बलात्कार और सामूहिक हत्याएँ ! लेकिन मजहबी वहशत का वह तूफान मनो-माजरा नामक एक गाँव को देर तक नहीं छू पाया; और जब छुआ भी तो उसके विनाशकारी परिणाम को इमामबख़्श की बेटी के प्रति जग्गा के बलिदानी प्रेम ने उलट दिया। उपन्यास के कथाक्रम को मानवीय उत्स तक लाने में लेखक ने जिस सजगता का परिचय दिया है, उससे न सिर्फ उस विभीषिका के पीछे क्रियाशील राजनीतिक और प्रशासनिक विरूपताओं का उद्घाटन होता है बल्कि मानव-चरित्र से जुड़ी अच्छाई-बुराई की परंपरागत अवधारणाएँ भी खंडित हो जाती हैं। इसके साथ ही उसने धर्म के मानव-विरोधी फलसफे और सामाजिक बदलाव से प्रतिबद्ध बौद्धिक छद्म को भी उघाड़ा है।

A.H.W.
राजकमल सीरीज

मूल्य : 50.00

राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पटना